बोतलानन्द

(हास्य-व्यंग्यपूर्ण रोचक उपन्यास)

चाँदी का जूता, ओ० टी० आर अमर हो, पकौड़ी साह जिंदाबाद, उलटा उस्तुरा, हँसता आँखें, ऊँची नाक आदि हास्य-व्यंग्यात्मक उपन्यासों के
रचयिता
विन्ध्याचल प्रसाद गुप्त

प्रकाशक—
सुभाष पुस्तक मन्दिर,
अवधगर्बी, बनारस।

मूल्य—
एक रुपया बारह आना

प्रकाशक—
सुभाष पुस्तक मन्दिर,

'बोतलानन्द' के पात्र एवं घटनायें कल्पित हैं।
अगर आपको पुस्तक पढ़ते-पढ़ते अपने ही चरित्र की
परछाईं दीख पड़े तो आपसे मेरा नम्र निवेदन है,
आप 'सूखे बैंगन' की तरह मुँह बनाने का
प्रयत्न न करें किन्तु अपना गुस्सा
सुर्ती की पीक की तरह थूक देने
का कष्ट स्वीकार करें !

—लेखक

मुद्रक—
राष्ट्रभाषा मुद्रणालय,
लहरतारा, बनारस कैन्ट।

श्रीहरिः

भूमिका

आनन्दमय बोतल की भूमिका सिवा हँसने के और हो भी क्या सकती है। हँसना एक कला है, उसी तरह हँसाना भी, और बोतलानन्द आपके पास पहुँचे भी इसी विचार से हैं। यही उनके जीवन की कहानी है जिसे वे अपने दोस्तों को आनन्द से सराबोर करने के लिए सुनाते रहते हैं।

संस्कृत साहित्य में वर्णित ९ रसों में हास्य का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। वाणी, अङ्ग आदि में विकृति देखने से जो विकास होता है उसी को हास्य कहते हैं। हास्य के विभाव को देखने से अर्थात् घुटने तक धोती, मिरजई, ललाट पर त्रिपुण्ड का खौर और उस पर खँचिया की तरह हैट रखने-वाले को देखकर जो हँसी उत्पन्न हुई वह 'आत्मस्थ' और इन कारणों से हँसनेवाले किसी का देखकर जो हँसी आये, उसे 'परस्थ' माना गया है। इसकी उत्तम, मध्यम और अधम ये तीन अवस्थाएँ होती हैं और उसी के अनुसार स्मित और हसित, विहसित और उपहसित तथा अपहसित और अति हसित ये ६ भेद होते हैं।

अपनेराम के विचार से हास्य के प्रारम्भिक दो भेद जिनका नाम स्मित और हसित है, कन्या राशिवालों के लिए खासतौर से रिजर्व हैं। हमारे एक मित्र हैं सिंह उपाधिधारी, पर कभी उन्हें इन दोनों से आगे जाते नहीं देखा। जरा लक्षण देखिए स्मित और हसित का। जिस हँसी में कपोल कुछ विक-

खिल हो जायँ, हलका कटाक्ष हो और अधर कुछ खिंच जाय पर दाँत दिखाई न पड़ें वह 'स्मित' हुई और यदि इससे कुछ आगे बढ़ गये अर्थात् मुख, नेत्र और कपोल स्पष्टतया खिल उठे और दामिनी की दमक की तरह रदन भी अपनी रौनक दिखा गये तो बस 'हसित'। अब आपही सोचिए, इस प्रकार की हँसी का आनन्द यदि आपके मित्र दिन में दो-चार बार भी आपको देने लगे तो बरबस आप कह उठेंगे—क्या यार बार-बार औरतों की तरह मुस्कुराते हो! इस प्रकार यह निश्चित-सा है कि स्मित और हसित स्त्री जाति के भूषण हैं न कि पुरुषों के।

खिलखिलाकर हँस पड़े—उपर्युक्त दोनों भेदों से यह भिन्न है, इसका नाम 'विहसित' है। इसी मध्यम श्रेणी के हास में दूसरे सज्जन का नाम है 'उपहसित' ये खिलखिलाहट से एक कदम और आगे बढ़ गये हैं। यह हास विशेषकर नैनबाण मारने के समय स्पष्ट हो जाता है। 'अपहसित' असभ्य की हँसी है और जिसमें पेट को हाथों से दबाकर कलाबाजी करने की नौबत आ जाय उसे 'अतिहसित' कहते हैं।

यह तो हुई हास्यरस के सम्बन्ध की साधारण जानकारी। दुनिया इन्हीं ६ भेदों में हँसती है और बोतलानन्द भी इन्हीं में चक्कर काटते हुए आपको हास्य के एक-एक भेद का उदाहरण बनाते चलते हैं। साथ-साथ हास्यरस के प्रसिद्ध उपन्यासकार गुप्तजी की मँजी हुई लेखनी का चमत्कार भी आपको एक-एक लाइन में मिलता चलता है और यही—आनन्दमय बोतल में अपने प्रेमियों को निमग्न कर देना—इस पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता है।

"तुलसी-कुञ्ज" भदैनी, काशी
बसन्त पंचमी, २०१०

विश्वनाथ त्रिपाठी
(साहित्याचार्य)

बोतलानन्द

१

हाथी के दाँत दिखाने के और, खाने के और होते हैं। 'बोतलानन्द' के नाम भी मित्रों के लिए और, अन्य लोगों के लिए और हैं। ईश्वर की तरह आपके हजार नाम नहीं, मगर दो-चार नाम अवश्य हैं। कामरेड जिस तरह 'ईश्वर द्रोही' के नाम से बदनाम हैं उसी तरह आप अपनी मित्र मण्डली में 'बोतलानन्द' के नाम से सुप्रसिद्ध हैं।

तीन लोक से जिस तरह मथुरा न्यारी है उसी तरह आदमी के बेटों में श्रीयुक्त 'बोतलानन्द' न्यारे हैं। 'नाम बड़े और दर्शन थोड़े' वाली कहावत इनके लिए नहीं, बल्कि उनके लिए है जो ओस चाटकर अपनी प्यास बुझाते हैं। श्रीयुत बोतलानन्द महाराज तो 'नेकी' पूछ-पूछकर करते चलते हैं। इसलिए 'पराये धन पर लक्ष्मीनारायण' करनेवाले मित्रों को चाय सुड़कने की चाह हुई तो फिर देखिये। आधा दर्जन से कुछ ऊपर की संख्या में भलेमानसों की टोली पैंट की जेब में हाथ डाले किस तरह हा-हा-हा-हा या ही-ही-ही-ही अथवा खी-खी-खी-खी करते 'बोतला-नन्द' के सेल में प्रवेश करती है।

'सेल' की चर्चा से किसी महापुरुष को यह नहीं समझना चाहिये कि 'बोतलानन्द' किसी राजनीतिक कैदी का नाम है और उनके मित्र मण्डली के मित्र भी सम्मान प्राप्त बन्दी हैं क्योंकि इससे 'ग़लतफ़हमी' हो सकती है। सचाई तो इसमें है कि 'बोतलानन्द महाराज' छोटे-मोटे ही सही, मगर सरकार की ओर से नियुक्त शानदार अफ़सर अवश्य हैं। उनके मित्रों में भी कई सरकारी अफ़सर हैं। एक-दो ठीकेदार, एक-दो केमिस्ट, एक-आध कवि अथवा लेखक भी उनके दरबारियों में से प्रमुख हैं।

चौपटपुर में वह छोटा-सा खपरैल घर है जिसे कवि 'सेल' कहता है। कई दिनों तक मजनू की तरह भटकने के बाद लैलारूपी वह खपरैल का घर बोतलानन्द किराये पर प्राप्त कर सके थे।

बोतलानन्द की वह लैला अथवा कवि के शब्दों में 'सेल' के विषय में 'तीन कनौजिया तेरह चूल्हा' के अनुसार कई मत हैं। कोई डंके की चोट कहता है कि यह 'पवित्र हिन्दू होटल' है तो कोई फुसफुसाकर रह जाता है—यह 'लैला' अथवा 'सेल' भी नहीं, चाय की दूकान है....।

बोतलानन्द महाराज के पास काँच की एक ही प्याली है जिसके कुछ हिस्से सम्भव हैं ४२ के आन्दोलन में टूट कर गायब हो गये हों। यह बोतलानन्द की बुद्धि ही है जो उस अमूल्य ऐतिहासिक धन की परख कर सकती है। उसे बड़े यत्न से वे सम्भाल रखते हैं। कोई-कोई अज्ञानी उनकी उपर्युक्त सुप्रबन्ध की महाशक्ति को 'अशर्फी की लूट' कोयले पर छाप कहता है। मगर ऐसे-ऐसे महाज्ञानियों की भी कमी नहीं जो 'लश्कर में ऊँट बदनाम', 'ऊँट बूढ़ा हुआ पर मूतना न आया', 'जिस पत्तल में खाना उसी में छेद करना' आदि व्यंग्यबाणों की बौछार उन अज्ञानियों पर करते और 'बोतलानन्द महाराज' के हृदय में विशेष स्थान बना लेते हैं।

सुना था, किसी जमाने में 'बोतलानन्द' राह चलते लोगों को पकड़-

पकड़ उनके मुँह से हलुआ छीनते थे, मगर अब तो न वह राजा है, न वह कहार। फिर भी आप उन्हें 'गया गुज़रा अज़ीमाबाद' कहकर सन्तोष पा सकते हैं....।

विनोद पसन्द यों आप अपने बेटे से भी मज़ाक करने में नहीं चूकते! वे स्त्रियों के नामों में से कोई नाम चुपके से चुराकर अपने सपूत के सिर थोप देते हैं। उदाहरण के लिए, आप 'लक्ष्मी', 'देवी', 'सीता', 'राधा', 'चन्द्रिका', 'भवानी', 'गंगा' आदि को याद कर सकते हैं।

कितने महापुरुष तो अपने को आधा औरत और आधा मर्द कहने में घूँघट नहीं निकालते। जैसे—'राधेश्याम', 'सीताराम' आदि। श्री 'बोतलानन्द' का नाम भी ऐसे ही नामों में से चुराया हुआ है। मगर वह तो 'वह गुड़ नहीं जो चींटी खाय' वाली कहावत चरितार्थ करते हैं। नसों में सिसोदिया वंश का लहू दौड़ते रहने के कारण मौका पड़ने पर आल्हा-ऊदल को मात देने के लिए वे कमर कसकर तैयार हो जाते हैं! ऐसा समझिये वे ओठों पर मुस्कान और हथेली पर जान लिए फिरते हैं।

अब मानिये, आप घी में चुपड़ी हुई या मिश्री में घुली हुई बातें करें तो वे अपने आगे की थाली आपके सामने रख देंगे। और कहीं भूल से भी आपने शेखी बघार दी अथवा आँखें दिखला दीं तो समझ लीजिये आप पर शामत सवार हो गयी। फिर तो आपको लम्बी-लम्बी मूँछों की जगह (अगर आप मूँछ वाले हैं) सफाचट मैदान ही नजर आयेगा।

डरिये नहीं! आप कभी धोखा के शिकार न हो जायँ, इस भय से उनसे आपकी जान-पहचान कराये देता हूँ। वह देखिए, सामने से 'बोतलानन्द महाराज' आ रहे हैं। गोल खोपड़ी पर छोटे-छोटे सुफेद बाल ऐसे लग रहे हैं, जैसे सफाचट मैदान को खोदकर चने के अंकुर झाँक रहे हैं। वह तो इस समय आपके बहुत नजदीक हैं, अगर चार बीघे दूर भी रहते तब भी उनका आकार ऐसा ही दीखता। अभिप्राय यह कि द्राक्षासव से भरी बड़ी बोतल ही आप समझते।

वाह-वाह ! भारी भरकम शरीर का बोझ किस प्रकार धरती पर डालते चल रहे हैं । अरे महाशय, धरती आपके बोझ से दबेगी नहीं, विश्वास रखिये ।

"नमस्ते" महाशय जी ! कहिये, आपके बाल-बच्चे भले चंगे तो हैं ? आपके पिताजी....मेरा ख्याल है....स्वर्गलोक का भ्रमण कर रहे होंगे ! अरे हाँ, आपकी पत्नी आपके मित्रों से चिढ़ती है या नहीं ? मेरा मतलब....मेरा मतलब और कहते-कहते बोतलानन्द भूल गये कि वे क्या कह रहे थे ।

आप विस्मय में क्यों पड़ गये ? इसलिए कि आज के पूर्व आपने उन्हें देखा तक नहीं और वे 'मान न मान, मैं तेरा मेहमान' अथवा 'पूछे न आछे मैं दुलहिन की चाची' वाली कहावतें चरितार्थ कर रहे हैं ! विस्मय से सुरसा की तरह खुले मुख को बन्द कीजिये, क्योंकि आप श्री बोतलानन्द के सामने खड़े हैं ।

हाँ, तो सुनिये ! श्रीयुत बोतलानन्दजी के कथनानुसार उनको पचास साला जिन्दगी में हारने कभी मुँह नहीं दिखाया मगर उनके बेरहम अफसर ने उन्हें जेल भी नहीं 'सेल' में भेजकर उनकी सारी चौकड़ी भुला दी ।

महाराणा प्रताप ने अकबर के आगे सर नहीं झुकाया इसलिए राणा के 'वंशधर' अकबर—पूत को पत्र-पुष्प भेंटकर पूर्वजों की आत्मा को कष्ट नहीं पहुँचाना चाहते । आज के युग में भला यह अहंकार भी सहने योग्य है । पत्रं पुष्पं का लोभी अफसर 'खरी मजूरी चोखा काम' वाली नीति से काम लेनेवाले बोतलानन्द को फूटी आँखों नहीं देखना चाहता । अफसर रूपी वह बिलार 'बोतलानन्द' के आज के युग के महापाप (!) के बदले उन्हें मूस की तरह चट करना चाहता है । बोतलानन्द की किस्मत है जो फूँक-फूँककर कदम रखने के कारण 'बिलार' के चंगुल में फँसने से बचे जा रहे हैं ।

'जल में रहकर मगर से बैर' वाली कहावत के प्रतीक बोतलानन्द दिन में बहत्तर बार झूठे मगर मधुर रिश्ता के नाम से अपने उपर्युक्त कल-युगी अफसर को याद करते हैं।

अफसर ने उनके मधुर स्मरण के कारण उन्हें एल० एल० पी० पी० की शानदार उपाधि दे दी है। उसका अर्थ आप नहीं समझ सके? वाह, अर्थ तो एकदम स्पष्ट है 'लिख लोढ़ा पढ़ पत्थर'।

हँसते-हँसते अभी आपने क्या पूछा?...अच्छा तो आप बोतलानन्द का असली नाम जानना चाहते हैं? अजी, छोड़िये भी इस पचड़े को। आपको आम खाने से मतलब रखना चाहिये, पेड़ गिनने से क्या लाभ?........

हाँ, हाँ, रुक क्यों गये? शर्म को लात मारिये! आप यही तो जानना चाहते हैं कि 'बोतलानन्द' से मेरा परिचय कब और कैसे हुआ? तो सुन लीजिये, जिससे आपको कभी यह जुबान पर लाने का मौका न मिले—'अंधों के आगे रोना, अपना दीदा खोना'।

एक दिन आदत के अनुसार हम हवा खाने के लिए निकले। साथ में मेरे अभिन्न मित्र दीपचन्द्र नाथ थे। थोड़ी देर आगे बढ़ते ही रमेश प्रसाद भी मिल गये। रमेश प्रसाद मित्र मण्डली में अपना विशेष महत्व रखते हैं। दीपचन्द्र नाथ बोल उठे—"रमेश, चलो आज 'बोतलानन्द' से 'बौखावसन्त' का परिचय करा दूँ।"

'बोतलानन्द' सुनते ही मैं चौंक पड़ा। बड़ा आकर्षक नाम है। नाम ही सुनते मन बाग-बाग हो जाता है फिर उनसे मिलने पर 'लोटन कबूतर' बनना अस्वाभाविक नहीं होगा।....

"दोस्तो! 'बोतलानन्द' के दर्शन से जीवन सफल बनाना चाहता हूँ। मुझे खुश देखना चाहते हैं तो जल्द कृपा की वर्षा कीजिये!" मैं गिड़गिड़ा उठा था।

"वह देखिये, वह रहे 'बोतलानन्द'।" दीपचन्द्र नाथ ने एक बड़ी

बोतल की आकृति वाले महापुरुष की ओर संकेत किया। और मैं फूल कर कुप्पा ही तो हो गया। ऐसा शानदार आदमी तो चिराग लेकर ढूँढ़ने पर भी मुझे नहीं मिलता।

"अजी चौपट यार जी, मेरे नमस्कार के साथ प्रणाम भी स्वीकार करें!"—बोतलानन्द की आवाज थी।

चौपट यार का असली नाम 'चौकस यार' है या चौपट यार, मुझे पता नहीं। क्योंकि श्रीयुत 'यार' न तीन में रहते हैं और न 'तेरह' में। उन्हें किसी से मिलना-जुलना, अधिकतर अपने विश्राम गृह में पांव रखने देना बिल्कुल पसन्द नहीं। वे तो अधिकांश समय यही गाकर गुजारते हैं—मेरा रमता जोगी नाम, मुझे इस दुनिया से क्या काम? अस्तु।

बोतलानन्द की आवाज ने श्रीयुक्त यार के मुख का रंग बिगाड़ दिया। उनकी आकृति सूखे बैंगन की तरह नहीं बल्कि 'शंकर्स वीकली' के कार्टूनों को छपाने योग्य बन गई थी।

अपने 'नमस्कार' का उत्तर न पाकर 'बोतलानन्द' चकित रह गये। क्षणभर चुप रहकर बोल उठे—"मिस्टर यार, मेरे मित्रों की संख्या कई हजार है मगर आपकी तरह नमस्कार के प्रत्युत्तर में मुँह सिकोड़ने वाला उनमें एक भी नहीं मिलेगा। क्यों, आज खाना नहीं खाया क्या?"

"आप कौन हैं?"—मिस्टर यार क्रोध को दबाते हुए बोले।

"आश्चर्य! चौपटपुर के घर-घर में आजकल मैं चर्चा का विषय बन गया और आपको खबर ही नहीं"—कहते हुए बोतलानन्द कुर्सी पर डट गये।

"मेरा मतलब है, आपका परिचय?"

"मैं आदमी हूँ जैसे आप हैं।"—बोतलानन्द मुस्करा उठे थे।

"यह तो मैं भी देख रहा हूँ।"—मिस्टर यार की परेशानी बढ़ गयी थी।

"फिर कौन चीज नहीं देख रहे हैं आप?"—बोतलानन्द पूछ बैठे।

"आपका सर !" मिस्टर यार झुँझला पड़े थे ।

"धड़ दिखाई पड़े और सर नहीं ? आश्चर्य ! घोर आश्चर्य ! मैं 'सिर-कटा भूत, नहीं मेरे पड़ोसी !"—बोतलानन्द की आवाज थी ।

"तो आप पड़ोस में ही रहते हैं ।"—मिस्टर यार ने क्षणभर कुछ रुक कर पूछा ।

"जी हाँ । दो घर के बाद ही तो ।"

'मिस्टर तिकड़मी की जगह पर आये हैं ?'—मिस्टर यार कुछ ठंडे पड़ गये थे ।

"जी हाँ मिस्टर यार, मैं भी आपकी तरह चौपटपुर का एक चौपट अफसर हूँ । 'नदी नाव संयोग' हुआ तो हम दोनों एक जगह एकट्ठा हैं ।"

"रोग का घर खाँसी और झगड़े की जड़ हाँसी, सुना है आपने ?"—मिस्टर यार गंभीर दीख पड़े थे । उनकी नजर हम दोनों पर पड़ गयी थी ।

"और भैंस के आगे बीन बजावे, भैंस रहे पगुराय भी सुना होगा आपने !"—बोतलानन्द मुस्कुरा पड़े थे ।

मिस्टर यार समझ गये आज 'ठठेरे-ठठेरे बदलौवल' है । 'मैं हँसी पसन्द नहीं करता' मिस्टर यार बोल उठे—"मुझे डर है कि कहीं आपको यह न कहना पड़े, 'चौबे गये छब्बे होने पर दूबे होकर आये" ।

'अफसोस !' बोतलानन्द के मुँह से निकल पड़ा—'नाचे-कूदे तोड़े तान ताके दुनिया राखे मान' आपकी खोपड़ी में नहीं । खैर छोड़िये । पान न सही लवंग-इलायची से भी मेरी खातिर कीजिये ! दोस्तों के लिए बढ़े हुए हाथ से हाथ न मिलाना भलमनसहत नहीं ।

मिस्टर यार लहू का घूँट पीकर रह गये ।

"क्यों मिस्टर यार, क्या लवंग-इलायची के योग्य मेरा मुँह नहीं ?"

बोतलानन्द के उपर्युक्त कथन से दीपचन्द्र साथ खिलखिला उठे । रमेश प्रसाद की बत्तीसी चमक उठी थी ।

मिस्टर 'थार' हँसी सुन पाजामे से बाहर हो गये। बोले—"मुँह बन्द कीजिये, नहीं तो आटे दाल का भाव मालूम करा दूँगा।"

"गुस्से थूक दो मिस्टर 'थार'! 'हँसुए के ब्याह में खुरपे का गीत अच्छा नहीं लगता।' बोतलानन्द पुचकारते हुए बोल पड़े 'लाओ' इलायची देना मंजूर नहीं तो लवंग देकर पीछा छुड़ा लो!"

फिर दीपचन्द्र नाथ खी-खी-खी-खी कर उठे। इस बार तो उनकी हँसी ने मिस्टर थार की क्रोधाग्नि में घी का काम किया।

"खोपड़ी चूर कर दूँगा।"—दाँत किटकिटाते हुए मिस्टर थार ने रूला उठा लिया।

इस बार बोतलानन्द महराज की खोपड़ी में कुछ परिवर्तन हुआ। वे समझ गये कि मिस्टर थार 'क्रोध' का नाटक नहीं कर रहे हैं बल्कि सचमुच आग-बबूला हैं। उनके मुँह से अपने अफसर के लिए आशीर्वाद (!) निकल गया।

"हाय, उस अकबर वंशज ने महाराणा के वंशधर को चौपटपुर में भेज खूब ही बदला लिया। बापरे, यहाँ लवंग इलायचों की माँगपर खोपड़ी तोड़ने की धमकी मिल रही है तो 'और कुछ' माँगने पर न जाने कौन-सी आफत सर पर टूटेगी!"—बोतलानन्द का एक हाथ सर पर पहुँच गया था।

"मेरी खोपड़ी फालतू नहीं है, याद रखिये!"—बोतलानन्द से चुप नहीं रहा गया।

"तो आँखों से दूर हो जाइये।" मिस्टर थार गरज उठे।

यह बोतलानन्द के लिए चुनौती थी। खून में उबाल आया। बोल उठे—"इतनी-सी जान और गज भर की जुबान! ईंट का जवाब पत्थर से दूँगा मिस्टर थार!"

वह कुरते की बाँह पर चढ़ाने लगे।

मिस्टर 'थार' भी पैंतरे बदलने लगे।

बालि-सुग्रीव संग्राम की पूरी तैयारी हो चुकी थी मगर दीपचन्द्र नाथ ने दाल-भात में मूसलचन्द बनकर सारा गुड़-गोबर कर दिया।

जब बोतलानन्द हाथ-पाँव पटकने से बाज आये तब दीपचन्द्र नाथ ने उन्हें बताया—"लवंग मिस्टर 'यार' की उस युवती दासी का नाम है जो उनकी पत्नी की गैरहाजिरी में उनके विश्रामगृह के प्रबन्ध का सारा भार वहन करती है।"

फिर तो बोतलानन्द की हँसी रोके नहीं रुकती थी।

"अब लवंग-इलायची की माँग ज़ुबान पर नहीं लाऊँगा।"—बोतलानन्द ने कान पकड़ लिये थे।

"मेरी भी यही राय है।"—मैं टपक पड़ा था।

"आप कौन....?"—उनकी उत्सुकता जग पड़ी थी। दीपचन्द्र नाथ मुँह खोलें तब तक मैं बोल उठा था—

"घोंघावसन्त।"

'बिल्ली के भाग्य से छींका टूटा।' कह उन्होंने हाथ बढ़ा दिया और आप ईर्ष्या न करें! उस दिन से श्रीयुत बोतलानन्द मेरे मित्र हैं।

२

अर्द्ध विक्षिप्त कवि भले ही बोतलानन्द के विश्राम-गृह को 'सेल' कहे, तिकड़म-मंडल का दार्शनिक सदस्य उसे 'पवित्र हिन्दू होटल' की उपमा दिया करे मगर वह तो उसे अपनी रियासत समझते हैं और जब तक तन में जान है अपने निर्णय को नहीं बदलेंगे।

एक दिन मैंने उनकी 'रियासत' में जैसे ही प्रवेश किया, बोतलानन्द दहाड़ उठे—"आप आ गये घोंघाबसन्त, मैं तो आपकी राह देख रहा था। आइए, तशरीफ रखिए!"

तशरीफ रखने के लिए कहने को तो उन्होंने कह दिया मगर उनके 'सेल' माफ कीजिएगा, रियासत में कहीं ऐसी जगह नहीं थी जहाँ मैं अपने शरीर का बोझ डालता। चारपाई पर तिकड़म-मंडल के सदस्य बैठे एक दूसरे के शरीर से अपना शरीर रगड़ रहे थे। सन्, ४२ के आन्दोलन से पाँच वर्ष पूर्व की दो काली कुर्सियाँ भी कमरे में थीं मगर वह भी खाली न थीं। सूटकेस पर भी दो-दो महारथी हनुमानजी की तरह डटे हुए थे।....

बोतलानन्द की बुद्धि जाग पड़ी। उन्होंने किरासन तेल वाले खाली टीन को शीर्षासन के लिये लाचार किया। फिर मेरी ओर संकेत किया गया—"बैठिए, घोंघा बसन्त जी।"

मैं प्रेम पूर्वक टीन पर आसीन हो गया।

"इस खपरैल के छोटे-से घर को, जिसमें, खाना, नहाना, पाखाना का एक साथ ही प्रबन्ध है, आप 'सेल' के नाम से मत पुकारिये और दार्श-

निक महाराज इसे 'पवित्र हिन्दू होटल' की दी गई उपाधि को वापिस ले लेने की कृपा करें !" बोतलानन्द का गम्भीर स्वर था ।

"फिर तो इस मनहूस घर के लिए 'ताड़ी-खाना' के सिवा कोई नाम भी नहीं जँचेगा ।" मैं कौतूहल से भर गया था ।

"बोधा बसन्त जी, आप इसे 'बोतलानन्द की रियासत' के नाम से याद कर सकते हैं ।"—बोतलानन्द के मुखपर विजय की मुस्कान थी ।

"मगर जब तक तर्क द्वारा आप हमारी आँखों से अज्ञान का परदा हटा न दें हम कैसे समझ लें कि यह किराये का ताड़ीखाने जैसा भवन आपकी रियासत है !"—दार्शनिक मित्र से चुप नहीं रहा गया ।

"यह घर नहीं, मेरा रियासत है और मैं यहाँ का महाराज हूँ ।" बोतलानन्द गर्व से सफाचट मूँछों पर हाथ फेरने लगे । अचानक खाँसी आई और कफ का एक टुकड़ा सामने बैठे हमेशा बाबू के कोट की कालर पर गोली की तरह जा लगा ।

"छिः छिः कहते हुए हमेशा बाबू उठ खड़े हुए ।

"क्या हुआ साहब !"—बोतलानन्द चौंक उठे थे । तभी हमेशा बाबू के कालर पर उनकी नजर पड़ी थी और उन्होंने झट रूमाल निकाल उसे पोंछ डाला था ।

"आप तो ऐसे डर गये थे, जैसे ऐटम बम गिर पड़ा हो । घबड़ाइए नहीं, इसके लिए आपको पत्नी से कैफियत नहीं देनी होगी ।"

और मैं बोतलानन्द से पूछ बैठा था—"तो हमेशा बाबू का नाम भी पत्नी-भक्तों की पंक्ति में आता है ?"

"अकेले इन्हीं का क्यों और दीपचन्द नाथ का क्यों नहीं ? दोनों दोस्तों के जन्म का नक्षत्र शायद एक ही था । आठ से सवा आठ रात के हो गये तब दोनों को हाथ जोड़कर "या देवी सर्व भूते...." का पाठ करना पड़ता है । यदि संयोग से आप दोनों की ट्रेन छूट गई और सन्ध्या

समय त्रिया राज्य में दाखिल नहीं हो सके तो बिना बुलाये ही जाड़ा-बुखार आप दोनों पर चढ़ बैठना है ।....''

मैंने मुस्कराते हुए प्रश्न सूचक दृष्टि पारा-पारी मित्रों पर डाली । वे भौंके भेद खुल जाने से दोनों छुई-मुई बन गये थे ।

''एक मैं भी मर्द हूँ, जो रात में दो बजे लौटूँ या रात भर गायब रहूँ मेरी पत्नी मुँह से सिसकारी भी नहीं निकाल सकती । अगर भूल से 'कैफ़ियत का बच्चा, भी मुँह से निकल जाय तो रूई की तरह धुनकर रख दूँ या भोथी तलवार से गरदन उड़ा दूँ ।....''

बोतलानन्द पर जोश चढ़ आया था । ऐसा, लगता था, अभी-अभी वे किसी को कच्चे निगल जायंगे !

''लोहे के चने की तुलना रसगुल्ले से करने चले हैं ! छोड़िए भी । अब अपनी रियासत के सम्बन्ध में तर्क पूर्ण विवेचना कीजिए !....'' मैं बोल पड़ा था ।

''हाँ....कहते-कहते उन्हें फिर खाँसी आ गई । मुँह में कफ का टुकड़ा लिए वे सोचने लगे ऐसे अमूल्य धन को कहाँ रख दूँ ?....''

निर्णय हो चुका तब उन्होंने थोड़ा आगे झुककर, आगे बैठे दोनों मित्रों को अपने कर-कमलों से हटाया । फिर तो 'थू' का जोरदार शब्द हुआ और इस बार कफ का हिमालय पहाड़ 'भचाक' से चूल्हे पर गिर पड़ा ।

सभी की नजर उस हिमालय पहाड़ पर रुक गई—यह देख बोतला-नन्द ने लापरवाही से सिर हिलाते हुए कहा—''कोई परवाह नहीं, चूल्हा कभी अपवित्र नहीं होता क्योंकि उसके मुँह में आग रहती !''

''अभिप्राय यह है कि हम सब भी पान की पीक से उसे नहला सकते हैं ?''—मैंने मुस्कुराहट छिपाते हुए कहा था ।

''बड़े शौक से आप लोग भी अपने मन का गुबार निकाल सकते हैं ।''

कहकर बोतलानन्द ने इस बार मेरी टाँग एक ओर हटाते हुए कोने में थूक दिया।

"हाँ।"—खखारकर गले को साफ करते हुए बोतलानन्द बोल उठे। जैसे कोई महत्वपूर्ण घोषणा करनेवाले हों।

"तिकड़म मण्डल के सदस्यों! आप लोग अपनी-अपनी खोपड़ी पर हाथ फेर लीजिये। ऐसा न हो आप लोगों की बुद्धि गहरी नींद में खर्राटा ही लेता रह जाय। जिसकी बुद्धि को बैल चर गया हो उस बेचारे के लिए तो कुछ कहना जख्म पर निमक छिड़कने के समान होगा!...."

उपस्थित सदस्यों के अधरों पर मुस्कान थिरकने लगी।

"बड़े-बड़े राजे-महाराजे की रियासत में गुणी-गवैये बिना निमन्त्रण पाये ही पहुँचते हैं तो मेरी रियासत भी कभी गवैयों से सूनी नहीं रहती। कभी गले में हारमोनियम लटकाये कोई कथा वाचक ही पहुँच गया तो कभी पीठ पर तबला लटकाये तबलची। कोई तान पलटा का चमत्कार दिखाकर जाने भी नहीं पाता है और कभी कोई झाल-मजीरा लिये अपना जौहर दिखलाने पहुँच जाता है। उपर्युक्त सबूत क्या यह प्रमाणित करने के लिये काफी नहीं कि यह छोटा-सा खपरैल-घर मेरी रियासत है?"

तर्क उपस्थित करने में रमेश प्रसाद को कमाल हासिल है। कठिन समस्या आ खड़ी होने पर जिस तरह अधिकारी, कूटनीतिज्ञ की ओर देखते हैं तिकड़मी भी उसी तरह रमेश प्रसाद की ओर देखने लगे।

रमेश प्रसाद ने किञ्चित मुस्कराहट से काम लिया फिर हँसी को रोकने का जबरदस्त प्रयत्न करते हुए वह बोले—"बोतलानन्द महाराज, जब किसी को पेड़ तले डेरा डालने के सिवा कोई उपाय चिराग लेकर ढूँढने पर भी नहीं मिलता तो वह 'पवित्र हिन्दू होटल' का नाम सार्थक करने आपके पास पहुँच जाता है।...."

सभी खिलखिला उठे। बोतलानन्द को हारते देख दीपचन्द्र नाथ को

मौन व्रत भंग करना ही पड़ा—"तिकड़मी बन्धुओं ! बोतलानन्द की ओर से वकालत मैं करूँगा ।"

"आप मेरे गुरुदेव भी तो हैं ।" बोतलानन्द 'नही का सहारा' योगी, पाकर फूल उठे थे ।

"सुनिये !"—दीपचन्द्र नाथ ने गरदन हिलाते हुए कहा—"महाराजा के पास दरबारी रहा करते थे, बोतलानन्द के पास भी हम लोग दरबारी हैं । महाराज खुश होते हैं तो किसी को पुरस्कृत करते हैं और रुष्ट होने पर फाँसी की सजा । बोतलानन्द खुश होते हैं तो हमलोगों को चाय सुड़कने, पान चरने का सुअवसर देते हैं और नाराज होते हैं तो बेला हाथ में लिये, रियासत से दूसर भागने का आदेश । अब जिसकी खोपड़ी में बाल हो वह बोतलानन्द के 'महाराज' होने में सन्देह करें ।"

"मुझे एतराज है ।" हमेश प्रसाद बिना फीस के जिरह करने के लिए कमर कस चुके थे ।

"तो समझ लीजिए आपने ओखल में सर डालने का साहस किया । खोलिए, अपने तर्क का पिटारा !"—दीपचन्द्र नाथ को ताव आ गया था ।

हमेश प्रसाद अपने शरीर को झकझोर सँभल बैठे । उसी रौ में बोले—"महाराज के दरबार में पतुरिया मुजरा सुनाया करती हैं मगर बोतलानन्द के दरबार में बराबर बिल्लियाँ लड़ती हुई पाई जाती हैं ।"

"आक् थू...." बोतलानन्द ने फिर चूल्हे पर कफ का पहाड़ गिराया और तैश में उठ खड़े हुए ।

"धत्तेरे की !"—उनकी लापरवाही से भरी मस्तानी आवाज थी । "कसम है जो मुजरा सुनने के लिये आपलोग कमर न कसें !"

"मालूम होता है, पहले आपने कुछ प्रबन्ध किया है !" हमेश प्रसाद सशंकित हो उठे थे ।

"चलिए ! अब वहीं पता लगेगा ।"....

जैसे चरवाहा अपने बैल और गायों को हाँकते चलता है वैसे बोतला-नन्द निःऋगा-मण्डल को डाँटते-हाँकते बगल के घर के द्वार पर पहुँचे।

"शान्ति प्रसाद !"—पुकारते हुए बोतलानन्द ने किवाड़ पर एक लात जमा दी।

और जब तक किवाड़ खुले-खुले बोतलानन्द का दूसरा आक्रमण धक्के द्वारा हुआ।

सभी भड़भड़ाते हुए, घर में घुस पड़े।

बोतलानन्द के पड़ोसी शान्ति प्रसाद चौपटपुर में किसी व्यापार के उद्देश्य से रहते हैं। अगर वह कौन व्यापार करते हैं, इस प्रश्न का सही-सही उत्तर निर्भीकता से कोई दे सकता है तो वह पहलवान हैं 'बोतलानन्द'।

छुक...छुम करती दो घुंघरियाँ एक कमरे में घुस गईं। शान्ति प्रसाद दाँत निपोड़े ही...ही...ही करने लगे।

"केवल ही...ही...ही ?" बोतलानन्द का शानदार स्वर था—"नहीं आज मेरे व्यापारियों के पूर्ण स्वागत का भार आपको अकेले अपने सिर पर उठाना है।"

"हाँ, हाँ, बैठिए, तशरीफ रखिए !" कहते हुए शान्ति प्रसाद ने उसी तरह दाँत निपोड़े सबको बैठाया और नौकर को चाय बनाने का आदेश दिया।

चाय भी बनी, पान के बीड़े भी आये, सिगरेट की होली भी जली और तब बोतलानन्द और शान्ति प्रसाद की काना-फूसकी के परिणाम स्वरूप 'छुम छुम छुम' दोनों घुंघरियाँ 'आदाब अर्ज' की झंकार करती लिक्खमी मण्डल के बीच आ बैठीं।

"अब शुरू होना चाहिए !"—यह 'महाराज' का मुजरा के लिए आदेश था।

शान्ति प्रसाद हारमोनियम पर हाथ फेरने के लिये किसी आदमी के

बेटे को पकड़ लाये थे। 'तबलची' चिराग लेकर ढूँढ़ने पर भी पकड़ में नहीं आया था।

"शरम लग रही है।"—छोटी ने शान्ति प्रसाद की ओर देखकर कहा और 'बोतलानन्द' की नजरों से नजरें मिला मुस्करा पड़ी।

"यह क्यों? वह क्यों?"—महाराज बोतलानन्द ने मजाकस का अभिनय करते हुए कहा।

"यहाँ एक 'मरद' भी बैठे हैं।"—कहकर उसने मूँछ उमेठने का अभिनय करते हुए मेरी ओर देखा और खिलखिला पड़ी।

वहाँ मेरे सिवा जितने भी थे सभी की मूँछों के बाल बड़ी सावधानी से उस्तरा द्वारा उड़ाये गए थे। जिसकी नाक के नीचे दो 'बिच्छू' सटे थे, वह अभागा मैं ही था।

"ही-ही, खी-खी,...." के परदे में अपनी शर्मिन्दगी छिपाते हुए सभी ने मेरी ओर देखा।...

मैंने रूमाल से 'बिच्छुओं' को छिपा लिया।

बड़ी ने शायद गाना जुबान पर लाने की कसमें खाई थीं। सम्भव है कभी गाते समय पड़ोसियों को उसके रोने का शुबहा हुआ हो और रोने का कारण पूछने पर उसने 'गाने' के नाम पर कान पकड़ लिये हों! जो हो! छोटी ने तीन गाने सुनाये। उसम प्यार भी हुआ, कलाई छोड़ने की प्रार्थना भी और उसके बाद एकदम दिल टूट जाने की जबरदस्ती घोषणा कर दी गई।

बोतलानन्द के आग्रह से चौथी बार जो उसने मुँह खोला तो उसकी आवाज 'रात भर रहकर सबेरे चले जाने की प्रार्थना' बन गई।

मगर इसके बाद न महाराज रुक न सके उनके दरबारी। सभी अपनी-अपनी खाली जेबों को टटोलते घर से बाहर निकल पड़े।

"ओह! न रहे मेरे वे दिन! महाराज बोतलानन्द के मुँह से निकला।

"कैसे दिन ?"—हमेश प्रसाद ने छेड़ दिया।

"उन दिनों मैं 'मुंगेर' में था।" बोतलानन्द राहपर वह कहानी उगलने लिए कमर कसकर खड़े हो गये।

"मेरे दोस्त भी वहीं एक अफसर थे।....आक थू"—थूकने के बाद उन्होंने यों कहानी की टूटी टाँग जोड़ी—एक तो जालिम जवानी और उसपर होली का जमाना! करैला वह भी नीम चढ़ा। होटल में दोस्त ने 'रम' से भरा प्याला बढ़ाते हुए कहा—"पी लो यार।"

मैंने मुँह बिचकाते हुए कहा—"मेरे लिए यह 'दुश्मन' है।"

"दुश्मन को जिस तरह हो उदरस्थ करने वाला 'चाणक्य' से कम नीति निपुण नहीं कहा जा सकता मित्र!"

"मजबूरी है।"—मैंने दाँत निपोड़ दिये।

"कायरता का दूसरा नाम ही मजबूरी है। दुश्मन अथवा मदिरा को निगलने के लिए 'हाथ भर का कलेजा' चाहिये।"

दोस्त की वह उपहास भरी हँसी मेरे कलेजे को छेदती हुई पार हो गई। मैं दोस्त की ललकार से तिलमिला उठा।

"देखियेगा मेरा कलेजा ?"—मुझे ताव आ गया था। दोस्त ने मुँह से तो कुछ नहीं कहा, मगर उसके ओठों पर मुस्कुराहट मेरे क्रोध की आग में घी बन गई।

"कसम है तुझे जो मुझे पूरी बोतल नहीं पिला दो!"—मैं गरज उठा।

"लीजिए!" उसने मुस्कुराते हुए बोतल आगे बढ़ा दी। बोतल में से दो-तीन ड्राम उसने सोडा-वाटर में मिलाकर निगला था, मैंने अपनी बहादुरी प्रकट करने के लिए यों ही बोतल मुँह में लगा ली।

उफ! मुझे क्या पता था कि उसमें आग भरी होगी। दो घूँट गले के नीचे उतरते ही खाँसी आ गई।

दोस्त ठहाका लगा बैठा।

आग होगी बला से। मैंने साहस संचय किया और 'गट-गट' पूरी बोतल खाली कर दी।

मगर क्षण भर में कमरा घूमने लगा। पेट में जैसे आग धधक रही थी। कुछ भी हो अपनी कमजोरी प्रकट करना भारी मूर्खता होगी। मैंने जोश में टेबुल पर मुक्का मारते हुए कहा—"अवश्य।"

बोतल से प्याला टकराया। भीम गर्जना से होटल में उपस्थित आदमी के बेटे वैसे ही चौंक उठे जैसे व्याघ्र-गर्जना से डरपोक सियार।

दोस्त ने मेरी बाँह पकड़ गिड़गिड़ाते हुये मोटर में बैठाया। कुछ देर बाद हम लोग इन्द्रपुरी (!) में थे। रात अधिक बीत जाने के कारण इन्द्रपुरी की अप्सराएँ किवाड़ लगाकर आराम कर रही थीं।

बहुत खोजने के बाद एक अप्सरा का द्वार खुला मिला। वहाँ सारंगी के कान उमेठे जा रहे थे। कई बार तबले पर थाप पड़ने की ध्वनि भी सुनाई पड़ी थी।

मेरे दोस्त अफसर मेरी बाँह पकड़े दरवाजे की ओर बढ़े तभी एक भड़ुए ने कहा—"हुजूर, भीतर एक रईस बैठे हैं।"

मेरे शरीर में आग ही तो लग गई। बढ़कर एक जबरदस्त चाँटा जो इसके गालपर लगाया तो जैसे उसकी नानी मर गई।

"गदहे, मेरे सामने कौन है 'रईस'?" कहते हुए मैंने दुबारा हाथ जो उठाया तो वह कायर मैदान छोड़ भाग खड़ा हुआ। "देखिए जनाब!"....चेतावनी भरी आवाज थी।

मैंने घूमकर जो देखा तो एक नवाबजादे दो खुशामदी टट्टुओं के साथ बैठे आँख लाल-पीली कर रहे थे।

सीसौदिया वंशधर के आगे यह शान! नस-नस फड़क उठी। दूसरे क्षण नवाबजादे की छाती पर सवार मैं उन्हें छठी का दूध याद करा रहा था।

उठकर एक लात, फिर बैठकर दो मुक्के, फिर कराकर दो ऐंठ और तानकर चार चाँटे ।

बेचारे नवाबजादे यों बोल जाते अगर दोस्त अफसर ने मेरी ठुड्डी पकड़ उसे माफ कर देने की स्तुति नहीं की होती ।

खुशामदी टट्टू गदहे की सींग की तरह गायब थे ।

दादे की कमाई ऐयाशी में उड़ाने वाले नवाबजादे भी भीगी बिल्ली की तरह हमारी आँखों से ओझल हो गये ।

"सुनाओ मुजरा ।"—मैंने पचास रुपये के नोट अप्सरा के आगे फेंकते हुये ललकारा ।

फिर मुजरा हुआ और खूब हुआ पलंग पर नींद में बेसुध अप्सराएँ जगा-जगाकर वहाँ उपस्थित कराई गईं ।

जिसने आने से इन्कार किया, मैं 'भंग घोटना' लिये, उसके दरवाजे पर साक्षात् यमदूत बनकर पहुँच गया । फिर तो मेरी लात के धक्के से उसके 'किवाड़' चरमराकर टूटते ही, गालियों की बौछार के साथ मेरे नमाजी भी लड्डुओं को सहने पड़ते ।

मगर मुझसे इनाम पाकर अप्सराओं का सूखा बैंगन-सा मुख 'कमल' की तरह खिल उठता ।

सुबह को जब आँखें खुलीं तो मैं दोस्त अफसर के कमरे में था । जेब में हाथ डाला तो एक दमड़ी भी नहीं । हाय भगवान ! उसी दिन हजार रुपये घर से लाया था 'जेवर' खरीदने के लिए । काटो तो शरीर में खून नहीं ।

पूछने पर पता लगा, रात में सभी रुपये मैंने अप्सराओं पर लुटा दिये ।

...सुना है, अब तक वहाँ की अप्सराएँ मेरी राह देखती हैं !...

तिकड़म-मण्डल के सदस्य बोतलानन्द जैसे मित्र की मित्रता का सौभाग्य प्राप्त करने के कारण अपनी-अपनी किस्मत को सराहते अपने-अपने घर की ओर कदम बढ़ाये ।

३

लश्कर में ऊँट की बदनामी का कारण भले ही किसी आदमी के बेटे को ज्ञात न हो मगर श्रीयुक्त बोतलानन्द की सुख्याति का रहस्य तो चौपटपुर के मुरगे तक जानते हैं। अगर सुबह-सुबह आँख खुलते ही, बोतलानन्द के कानों में किसी बदकिस्मत मुरगे की आवाज 'कुकड़ूँ-कूँ' पड़ जाय तो आप हैं कि ढेला लिये मुरगे के पीछे दौड़ते नजर आयेंगे। अगर उस समय किसी ने पूछ दिया, "बोतलानन्द महाराज, आपके चौके में घुस गया था क्या ?" तो आप फौरन उत्तर देंगे, "धत्तेरे की आप भी क्या बात करते हैं। चौके में घुसता तो उसकी टाँग पकड़कर चीर नहीं देता..."

उसके बाद विस्मय के कारण आप पूछ बैठें—"फिर कौन-सी आफत ढाह दी गरीब मुरगे ने ?" तो बोतलानन्द सीना फुलाते हुए कह बैठेंगे—"मैं तो दो घंटे पहले से आँखें खोलकर बैठा था और यह चला था मुझे चिल्लाने कि, जागो बोतलानन्द !"

बोतलानन्द की सुख्याति के एक ही नहीं बल्कि अनेक कारण हैं। उनमें एक दिलचस्प कारण यह भी है।

अगर आप कहें, "अहा ! बारात गई थी मेरी। उसमें पाँच सौ से कुछ अधिक ही बराती थे और चार-चार गरोह नाच...."

फौरन बोतलानन्द आपके मुँह की बात छीन कर कहेंगे "धत्तेरे की ! बारात गई थी मेरे साले की, जिसमें दस हजार से कम बराती न थे। एक हजार तो केवल हाथियों की संख्या थी। आसाम से लेकर बंगाल और

नेपाल तक के हाथियों की मँगनी हुई थी। दो हजार उसमें अव्वल दर्जे के घोड़े पहुँचे थे जो चाँदी के गहनों से लदे थे। बारात जिस सड़क से गुजरती उस सड़क की किस्मत बिगड़ जाती। ईश्वर झूठ न बोलवाये तो मिट्टी उड़ जाने से हाथ भर नीचे सड़क धँस जाती। बास-बीस गरोह तो बनारस की रंडियाँ और तीस से कम लखनऊ के भाँड़ न थे।" अगर आपने कह दिया—"इतने जीव और जानवरों का भोजन कैसे जुटा होगा?" तो बोतलानन्द कहेंगे—"भोजन के विषय में कुछ न पूछें! बाप रे, गाँव के सभी कुँओं में मेरे साले के ससुर ने चीनी के बोरे डलवा दिये थे। बाराती कुँए के पानी तो सुड़क ही गये कीचड़ भी निचोड़-निचोड़कर चाट गये। गाँव में किसी के पास जब अन्न का एक दाना भी नहीं बचा तो, बाराती पेड़ के पत्ते नोंच-नोंच कर चबाने लगे...."

कहीं नाक-भौं सिकोड़ कर आप बोल उठे कि—"ऐसी बारात भी भला क्या जिसमें बारातियों को खिलाते-खिलाते नाक में दम न कर दिया जाय...."

तो बोतलानन्द खखार कर भच् से कफ का टुकड़ा बगल में मुँह से उगलते हुए कहेंगे—"सुनिये! वैसी बारात गई थी मेरे चाचा के साले के भतीजे के विवाह के अवसर पर। बारात जैसे ही गाँव में पहुँची इमरती पर इमरती, जलेबी पर जलेबी, पूड़ियों पर पूड़ियाँ और पान पर पान खाते-खाते बाराती के जी ऊब गये। दूसरे दिन 'कलेवा' के समय जब बाराती आँगन में बैठे तो काँख रहे थे।" मेरे चाचा के साले के भतीजे के ससुर जूता हाथ में लेकर खड़े हो गये और बोले—"जो बाराती एक सेर से कम रसगुल्ले खायेगा उसकी खोपड़ी इसी जूते से गंजी कर दूँगा।"

"वाह; इसे कहते हैं स्वागत!" शायद हँसी रोकते हुए आप कह बैठें अथवा जुबान नहीं हिला सकें मगर बोतलानन्द का मुँह बन्द नहीं होगा। वे तो कहते ही जायेंगे—"रसगुल्लों के नाम से बारातियों की नानी मर

गई। यहाँ तो यह हालत थी कि पेट में तिल रखने की जगह न थी और भीतर का अन्न बाहर निकलने के लिए मचल रहा था। सो साहब, प्रत्येक बारातियों ने जूते खाना स्वीकार किया मगर रसगुल्ले मुँह में डालना नहीं....।"

एक दिन मित्र-मण्डली के बीच बोतलानन्द विराजमान थे। उस दिन चण्डाल चौकड़ी, दीपचन्द्र नाथ जी के दरवाजे के सामने शोभित थी।

बोतलानन्द, दीपचन्द्र नाथ के अक्खड़ पुत्र भोलाशङ्कर से उलझ रहे थे। भोलाशङ्कर को नाद की तरह फैली बोतलानन्द की तोंद से शायद दुश्मनी है तभी उनके वहाँ उपस्थित होते ही तोंद को मुक्के से रुई की तरह धुनने लगता है। उस दिन भी आदत के अनुसार वह बोतलानन्द की तोंद पर मन का गुबार उतारने लगा। मगर और दिनों की तरह वह मुक्के का प्रयोग नहीं कर रहा था क्योंकि उसके हाथ में एक छोटी-सी लाठी लग गई थी।

लगातार तोंद पर लाठी की वर्षा से बोतलानन्द घबड़ा उठे। वे भोलाशङ्कर को उसकी दुष्टता की सजा देने के लिए तैश में उठे तो कमर से उनकी धोती नीचे खिसक पड़ी। सभी खिलखिला पड़े और भोला-शङ्कर घर में घुस गये।

"आज निकलो तो बच्चू, कान काटकर जो नहीं रख दिया तो कह देना।"—बोतलानन्द ने धोती सँभालते हुए भोलाशङ्कर के लिए, मुँह के तरकस से शब्दों के तीर छोड़े।

"ही-ही-हू" भोलाशङ्कर ने मुँह बिचकाते हुए दरवाजे पर खड़े हो लाठी दिखला दी।

"नहीं मानेगा तू?"—बोतलानन्द आँखें बन्दकर बोल उठे।

"नहीं, तोंद पचका दूँगा।"—भोलाशङ्कर ने मचलते हुए कहा।

दीपचन्द्र नाथ ने भोलाशङ्कर को डाँटते हुए कहा—"बस, अब नहीं।...जा, बोतलानन्द के लिए माँ से सुँघनी मँगवा ला!..."

घुँघनी का नाम सुन भोलाशङ्कर उछलते-कूदते आँगन की ओर दौड़ प ।

"क्यों, बोतलानन्द को घुँघनी विशेष पसन्द है क्या ?" मि० सिंह पूछ बैठे !

मि० सिंह मित्र मण्डली के नये सदस्य हैं । बनारस के निकट इनका दौलतखाना है । व्यापार के सिलसिले में कुछ महीनों से रोटियाँ तोड़ते हैं ।

"क्या कह रहे हैं मि० सिंह !" श्री दीपचन्द नाथ बोल उठे—"घुँघनी इन्हें पसन्द ही नहीं, बल्कि उससे इन्हें इश्क भी हो गया है ।"

"बोतलानन्द और इश्क ? भंग तो नहीं छान ली है आपने ।" मि० सिंह का व्यंग्यात्मक स्वर था ।

"क्यों, बोतलानन्द के सिर पर इश्क सवार ही नहीं हो सकता जो आप पाँव के नीचे साँप पड़ने की तरह उछल पड़े ?"—दीपचन्द्र नाथ ताव खा गया ।

"जी नहीं ! मेरा ख्याल है, बोतलानन्द का शरीर जिस धातु से बना है, वहाँ इश्क के फटकने की गुंजाइश ही नहीं है ।"

मि० सिंह ने सँभलकर बैठते हुए कहा—"पत्थर में जोंक नहीं लगती श्री दीपचन्द्र नाथ !...अगर आप बोतलानन्द के पास सोने का दुर्भाग्य प्राप्त करें तो सहज में ही जान पायेंगे कि बोतलानन्द की पलकें बन्द हैं मगर मुँह से रह-रहकर फट्-हट् और धत् बारी-बारी से निकल रहे हैं । नाक से खर्र-खों का मधुर स्वर निकलता है उसकी भला चर्चा ही क्या !...."

बोतलानन्द मौन थे । वे सर खपाने पर भी नहीं समझ पा रहे थे कि उनके मित्र बनने वाले उनकी तारीफ में शब्दों के जाल बुन रहे हैं या व्यंग्य की बौछार कर रहे हैं ।...

देश-विदेश पैरों से नाप आने वाले घुमक्कड़ मि० सिंह बोतलानन्द के मन का भाव ताड़ गये। झट बोल उठे—"चिन्ता न कीजिए बोतलानन्द महाराज! भगवान सब को ऐसा अनोखा गुण नहीं देते। वाह क्या कहने हैं आपके! मुर्दे से बाजी लगाकर सोयें आप और समझने वाले समझें कि आप जाग ही रहे हैं। मैं तो डंके की चोट कह सकता हूँ कि आपके मुँह से निकलने वाले फट्-हट् और धत् चोरों को घर में घुसने नहीं देंगे।"

"अरे आप तो सो रहे हैं!"—दीपचन्द्र नाथ चिल्ला उठे।

"सचमुच!"—मि० सिंह चौंक पड़े। बोले—"मैंने समझा था, आँखें बन्दकर ध्यान से मेरी बातें सुन रहे हैं।"

"एँ"—बोतलानन्द ने घबड़ाकर आँखें खोल दीं। बोले—"आज भंग की मात्रा कुछ अधिक हो गई थी। दिमाग़ आकाश में हवा खा रहा है। कुछ खिलाइये गुरूदेव!"

दीपचन्द्र नाथ ने कहा—"भोलाशङ्कर, जल्दी घुँघनी लाओ! बोतलानन्द भूख से बेहोश होना चाहते हैं!"

और भोलाशङ्कर तश्तरी में घुँघनी लिये आ पहुँचा। मुट्ठी में घुँघनी उठाकर बोतलानन्द ने मुँह में डाल ली। फिर घुँघनी से मुट्ठी भरते हुए वे बोल उठे—"गुरुदेव, दही और पेड़े मँगाइये। घुँघनी नहीं खाऊँगा।"

और जब दही पेड़े आये तब एक सेर चने की घुँघनी बोतलानन्द के पेट में चली गई....।

....दही-पेड़े सभी एक साथ खाने बैठे। दोस्तों ने अभी एक बार ही पेड़े को मुँह में रक्खे थे कि बोतलानन्द ने जल्दी-जल्दी सारी सामग्रियों को उदरस्थ कर लिया।

मि० सिंह ने कहा—"हाँ, अब समझा कि भाँग की भी कोई हस्ती होती है।"

"हाँ, तो इश्क की चर्चा कर रहे थे गुरुदेव !" बोतलानन्द ने लापरवाही से कहा ।

और उनके गुरुदेव (!) दीपचन्द्र नाथ को उनकी भाव-भंगिमा देख यह समझते देर न लगी कि श्रीयुक्त बोतलानन्द दूसरे ही क्षण कोई दिलचस्प कहानी सुनाने वाले हैं ।....

"जी हाँ !" उनका छोटा-सा उत्तर था ।

"तो सुना ही दूँ मैं वह भेद की बात !"—कहकर बोतलानन्द ने खखारा और फिर भद् से उनके मुँह से कफ का टुकड़ा निकल पड़ा ।

"हाँ, हाँ, अवश्य सुनाइये ।" मि० सिंह बोल उठे—"भेद की बात पेट में रखने से अजीर्ण रोग घर दबाता है ।"

"अब कोई क्या करेगा वैसा इश्क जैसे मैंने किया है ।" कहकर बोतलानन्द ने लम्बी साँस ली ।

"आखिर हमलोग भी तो सुनने के लिए ही बैठे हैं ।" दीपचन्द्र नाथ बोल उठे ।

"आप चुप रहिए न ।" मि० सिंह ने विशेष प्रकार से अनुरोध करते हुये कहा—"बोतलानन्द महाराज का मुँह जब खुल चुका तो समझ लीजिए घंटे दो घंटे के बाद ही वह बन्द होगा ।"

"हाँ ।"—अपने खास ढंग से सिर हिलाते हुए दीपचन्द्र नाथ ने बोतलानन्द के मुँह की ओर देखा ।

"गुरुदेव, मेरे गाँव में एक 'भूखंगन' नाम का आदमी था ।" बोतलानन्द ने गला साफ करने के बाद झूठे रिश्ते का नाम लेकर कहा—"× × से ऐसी दोस्ती हो गई थी कि न उसके देखे बगैर मुझे चैन मिलता था और न मुझे देखे बगैर उसको । समझ लीजिए, हमारी दोस्ती धोती और लंगोटी जैसी थी ।

"आप औस्कर वाइल्ड और उसके प्रिय पात्र अल्फ्रेड डगलास की

कहानी का भावानुवाद तो नहीं सुना रहे हैं।'' कहकर दीपचन्द नाथ के अधरों पर व्यंग्यभरी मुस्कान फूट पड़ी।

''च:''—मि० सिंह के मुँह से निकल पड़ा।

''देखिए गुरुदेव, बीच में टाँग मत अड़ाइए, नहीं तो मैं जुबान हिलाने के लिए बुरी कसमें खा लूँगा।''—बोतलानन्द ने चेतावनी दे दी।

''आप मेरी ओर मुँह करके बकिये बोतलानन्द जी। दीपचन्द्र नाथ की जीभ यों ही खुजलाया करती है। वे भला क्यों मुँह बन्द रखेंगे।''—मि० सिंह का क्षोभपूर्ण स्वर था।

''कसम खिला लो मि० सिंह, जो मुँह से सिसकारी भी निकालूँ।'' दीपचन्द्र नाथ के दोनों ओठ सट गये।

''अब तो आपको विश्वास हुआ? चलिए, कहानी की गाड़ी आगे बढ़ाइए!''—मि० सिंह लपाक् से बोले।

बोतलानन्द के मुँह का फाटक खुल पड़ा—''हम दोनों की दोस्ती देख, माँ ने कहा था—हे बेटा, तुम दोनों दोस्तों के जन्म एक ही दिन और एक ही समय हुए थे। 'भुचंगन' की माँ जब 'भुचंगन' का गोद में लेकर आती तो मैं उसे दूध पिलाया करती और उसकी माँ अपना स्तन तुम्हारे मुँह में लगा दिया करती थी। सो साहब, बचपन से ही 'भुचंगन, की दोस्ती की गाँठ मेरे मन को बाँधती गई।....''

एक दिन मैंने भुचंगन से कहा—''यार!''

उसने कहा—''हाँ यार।''

मैं बोला—''उस राँड़ को तुम जानते ही हो...''

उसने विस्मय से पूछा—''किस राँड़ की बात यार के मन में है?''

मैंने कहा—''अरे यार, जिसका घर ताड़ के पास है।''

''बस-बस बूझ गया।'' यार भुचंगन मुस्कुरा पड़ा। बोला उसकी —

जवान बेटी 'तितली' है जो गाँव के नवजवानों को अँगूठा दिखाया करती है।

"यार. है तो बड़ी शर्म की बात और उसे ज़ुबान पर लाने में आँखें भर आती हैं....।"

वह मुँह की बात छीनकर बोल उठा—"बस-बस, अब उसे ज़ुबान पर भी मत लाइए। बगैर कलई खोले ही मैं समझ गया कि 'तितली' के कारण आपकी पगड़ी उछाली गई है।"

मैंने फुसफुसाकर कहा—"यार भुचंगन, उसने बिना हिचक के कह दिया था, यह मुँह और मसूर की दाल !"

"बस इतना ही ?" भुचंगन बोल उठा—"मैंने समझा था, तितली ने तमाचा मारकर तुम्हारे मन का बुखार उतारा होगा।"

"धत्तेरे की ! उसके फूल जैसे हाथों के तमाचे से मेरा क्या बिगड़ता !" मैंने कहा—"मगर उसने व्यंग्य का तीर छोड़कर कलेजे में छेद जो कर दिया—इसी का मुझे बेहद दुःख है। लाठी की चोट से बात की चोट कहीं अधिक गहरी होती है....।"

"फिर इरादा क्या है ?" भुचंगन पूछ बठा।

"इरादा क्या होगा !" मैं बोला—"उसे उसकी करनी का मजा चखाकर, अपने दिल के फफोले फोड़ना है।"

यार ने नाक-भौं सिकोड़कर कहा—"औरत पर हथियार तो आप उठा नहीं सकते। रही बात-लात और मुक्के से शरीर का दर्द दूर करने की, तो वैसा करने से भी लोगों की उँगली उठने का भय है। सम्भव है, तितली पर मर मिटने के लिए तैयार होने वाले 'मजनू' हमसे लोहा ले लें।"

मैंने मुट्ठी बाँधकर कहा—"कौन माई का लाल है जो मेरी ओर आँख उठाने का दुस्साहस करेगा ? एक-एक का सर लाठी से भुर्ता बना

दूँगा....और यार, यह क्यों भूल जाते हो कि मेरे चाचा इस गाँव के जमींदार हैं।"

"फिर 'तितली' पर कौन-सा आफ़त का पहाड़ ढाने की अभिलाषा है ?" भुचंगम मेरे मुँह की ओर देखते हुए बोल उठा।

मैं जो कुछ करना चाहता था, उससे बिना इधर-उधर किये ही मैंने उगल दिया। उसने टालमटूल करते हुए कहा—"यह बहुत बड़ी दुर्घटना होगी और उसकी खबर आग की तरह गाँव में फैल जायगी।"

"जो कुछ होगा, देख लूँगा !"—मुझे भी ताव आ गया।

उसने पुचकारते हुए कहा—"यार, तितली की इज्जत मिट्टी में मिलाने के पहले अपने गुस्सैल चाचा की तो याद कर लीजिये।"

"ओह भुचंगम, तुम्हरा कलेजा बकरी का है।" मैं वैसे ही आवेश में बोला—"बहुत होगा तो चाचा साहब सिर पर दस-बीस जूते गिन देंगे और उससे मेरा बाल भी बाँका न होगा।"

अब तो (झूठे रिश्ते का नाम लेकर) भुचंगम के पास कोई जवाब नहीं था। वह मेरे कन्धे से कन्धा मिलाने के लिए तैयार हो गया था।

दूसरे दिन मेरे गाँव से दो मील दूर तक मेला लगा उस मेले में मरदों से अधिक स्त्रियाँ पहुँचती थीं।

'तितली' भी पीली साड़ी पहने अपनी बिधवा माँ के साथ मेले जा रही थी।

हम दोनों यार भी उसके पीछे-पीछे परछाईं की तरह चल रहे थे। रास्ते में अरहर का खेत मिला जिसमें आदमी को छिपाने लायक अरहर के घने पौधे थे। मैंने कहा—"भुचंगम, बहादुरी दिखाने का समय आ गया, तुम सावधान हो जाओ !"

"मैं सावधान हूँ।"—भुचंगम के कान खड़े हो गये।

"और मैंने ताल ठोककर 'तितली' को जमीन से ऊपर उठा लिया।

दूसरे क्षण वह मेरी पीठपर मछली की तरह छटपटा रही थी और मैं उसे चंगुल में दबाये अरहर के खेत में भागा जा रहा था।

मीलों तक खेतों में अरहर के पौधे फैले हुए थे।

जब मैंने समझ लिया कि यहाँ से 'तितली' गला फाड़कर चिल्लाने पर भी किसी के कानों में अपनी आवाज नहीं पहुँचा सकती, तब उसे जमीन पर पटककर बोला—

"अब बोल शैतान की खाला। मेरा मुँह मसूर की दाल खा सकता है या नहीं!" उस समय मेरी आँखों में खून उतर आया था।

उसकी घबड़ाहट कम हो गई थी, मुझे बड़ा अचरज हुआ। वह तन कर बोली—"नहीं खा सकता है आपका मुँह, मसूर की दाल।"

"क्यों री, तेरे सरपर काल मँडरा रहा है जो मेरे मुँह लग रही है।"—मैं उसका गला दबोचने के लिए आगे बढ़ा।

वह पीछे हट गई। बोली—"कारण सुन लीजिए तो काम तमाम कीजिएगा।"

"बोल क्या कारण है मेरे मुँह को मसूर की दाल नहीं खाने का!"—मैं लहू का घूँट पीकर बोला।

"इसलिए कि आपके शरीर में सिसोदिया वंश का लहू है।" उसने बेधड़क कहा—"और उस लहू से मेरी फरियाद है कि ऐ राणा के खून, जागो! मेरी लाज लुटने ही वाली है, मेरी रक्षा करो....'

और उसके शब्दों ने जैसे मुझपर जादू कर दिया। मैं स्वयं ही अपनी आँखों में खटकने लगा। फिर आँखें कपाल पर चढ़ गईं और मैं आवेश में अपने ही हाथों अपने मुँह में तमाचे मारने लगा।

"न जाने कब तक मैं अपने गालपर तमाचे लगाता रहता अगर 'तितली' ने मेरा हाथ नहीं पकड़ लिया होता। मैंने कहा—'तितली' कोई तुम्हें बुरी नजर से देखे तो मुझसे कहना। मैं उस शैतान के दाँत तोड़ दूँगा..."

"शाबास !"....'बहुत अच्छे' 'वाह-वाह'....उपस्थित मित्र मण्डली के मित्रों ने श्रीयुक्त बोतलानन्द पर शब्दों की बौछार कर दी ।

"मगर यह तो इश्क की अच्छी-सी मिसाल नहीं रही ।"—दीपचन्द्र नाथ नाक फुलाते हुए बोले—"इश्क सराहिये तो छुछुन्दर प्रसाद का, जो घर में सुमधुर भाषिणी और सुन्दर पत्नी के रहते हुए भी कोयले-सी काली और चेचक के दागों से भरे मुखवाली कुँजड़िन पर अपना प्यार लुटाते नहीं अघाते । कुँजड़िन दिन में जितनी बार उनका गालियों से स्वागत करती है छुछुन्दर प्रसाद उससे अधिक ही उसके तलवे सहलाते हैं ।...."

"धत् ! आप लोग तो मुँह खोलने नहीं देते ।" बोतलानन्द झुँझला पड़े । बोले—"अगर मुँह चलाने की कसमें खाकर आपलोग कान दें तो ईश्वर कसम, इश्क की ऐसी आपबीती कहानी सुनाऊँ कि किसी पोथी-पुरानी में भी उसकी मिसाल खोजने पर नहीं मिले ।"

"बस, उसे पेट से उगल ही दीजिए ।" मि० सिंह बोल उठे—"हमलोग अपने-अपने मुँह में दही जमा लेते हैं ।"

मित्र मण्डली, पर रङ्ग जमाने का सुअवसर पाते ही बोतलानन्द के मुँह में पानी भर आया । भच् से उन्होंने बगल में थूका और कहने लगे—

"उस समय सरकार से मिली नौकरी का और मजा ही था । सो साहब, पाखाना भी जाता तो सिर से टोप अलग नहीं करता । जिसपर मेरी नजर पड़ जाती उसे चोर ही समझकर प्रश्नों की झड़ी लगा देता । नौकर को बात-बात में गालियाँ सुना दिया करता । और राह में चलते-चलते गीदड़ भभकी ही नहीं दिखलाया करता बल्कि कुछ कौड़ी के तीन लोगों के सिरपर चपत गिराकर हाथ की खुजलाहट भी मिटाया करता । मेरे तङ्ग करनेवाले कामों ने थोड़े ही समय में मेरी अच्छी धाक जमा दी । बड़े-बड़े मुझे देखते ही झुक-झुककर सलाम करते । इस प्रकार उस इलाके

में मेरे नाम का डङ्का बज उठा। सभी कहते, "बाप रे, अलबत्ता 'कड़ियल' अफसर है...।"

अचानक एक दिन एक युवती से आँखें चार हो गईं। आँखों के आगे बिजली कौंध गई। बगल में मेरे मातहत का एक मुँहलगा सिपाही था। नाम था (झूठे रिश्ते का नाम लेकर)...का फतिंगासिंह। मैंने डपट कर कहा—"फतिंगा, मुँह क्या देखते हो? उस 'बिजली' को गिरफ्तार करो, वह मेरा दिल चुराये जा रही है।"

"सरकार! बिजली भी कहीं कैद में रक्खी जा सकती है?" फतिङ्गा हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

"बात उसकी खरी थी।" मैंने 'आह' भरकर कहा—"तो मेरा दिल वापस माँग लाओ!"

"सरकार, राजा के परिवार में जो चीज चली गई उसे वापिस लेना लोहे के चने चबाने के बराबर है।"

" तो क्या वह राजकुमारी है?"—मैं चौंक उठा।

"जी हाँ, धर्मावतार!"—उसका निराशा स्वर था।

"कोई परवाह नहीं, प्राण की बाजी लगा दूँगा।" मुझे ताव आ गया।

रात में उस दासी के सामने जा खड़ा हुआ जो राजकुमारी को अपने साथ स्कूल ले जाया करती थी। दासी ने मुझे बदहवास देख प्रश्न किया—"कहिए सरकार, मुँह क्यों फक है?"

"मँगरी, क्या बताऊँ, मेरी हालत साँप और छुछुन्दर जैसी हो रही है।" कहकर मैंने उसके आगे दो साड़ियाँ रख दीं।

साड़ियों की ओर ललचायी नजरों से देखती हुई मँगरी ने कहा—"हैं-हैं सरकार, यह क्या? मुझसे जो सेवा लेनी हो लीजिए, मगर साड़ियों की क्या जरूरत!"

और उसके लाख ना-नू करते रहने पर भी मैं उस रात साड़ियाँ छोड़ चला आया।

दूसरे दिन, मैं उछल पड़ा जब कि वह राजकुमारी के साथ उन्हीं साड़ियों में से एक पहने जा रही है। उसने मुझे देख मुस्कुराहट के तीर मारे।

उस रात मैंने फतिङ्गासिंह से उसके पास एक सेर रसगुल्ले भिजवा दिये।....

और एक रात मैंने उससे अपना इरादा प्रकट कर ही दिया। उसके पाँव के नीचे से जैसे साँप निकल गया। उसने सँभलते हुए कहा—"सरकार, राजा साहब के कानों में बात पहुँच गई तो मेरा सर धड़ से अलग कर दिया जायगा।"

"मँगरी!" मैंने उसके पाँवों पर टोप रख दिया। बोला—"अब मेरे टोप की लाज तुम्हारे ही हाथ है। यह समझ लो, तुम्हारे आगे मैंने ही अपना माथा नहीं झुकाया बल्कि सरकार भी झुक गई।"

तब कहीं मँगरी का पाषाण-हृदय पिघला। दूसरे दिन से वह मेरे विश्रामगृह के सामने से ही राजकुमारी को स्कूल ले जाने लगी।

और उसके प्रयत्नों के सुगन्धित छींटों ने मेरे मन का कली खिला दी।

मँगरी मुझसे रुपये और रसगुल्ले पाकर निहाल होती और राजकुमारी को दर्शन के बहाने मन्दिर में ले जाकर मुझे उसके दर्शन से निहाल कराती।

उसके बाद राजकुमारी के आग्रह से मैं उसके महल में पहुँचने लगा। महल के पीछे की ओर कोई पहरा न था। राजकुमारी निश्चित समय पर किवाड़ खोल देती और मैं कमरे में प्रवेश करता।

"एक रात राजकुमारी ने कहा—"तुम मेरे मन के तोता हो।" मेरी समझ में आया, वह मुझे हेय समझ रही है, तोता जिस तरह पिञ्जड़े में कैद रहता है, राजकुमारी भी अपने प्रेम के महल में मुझे कैदी समझ रही

है। मुझे बचपन से ही किसी की शेखी बरदाश्त करने की आदत न थी। मैंने डपटकर कहा—"तुम मेरे पाँव की जूती हो।"

मेरी तड़प सुन वह मेरे पाँवों से लिपट गई। बोली—"बेशक, मैं तुम्हारे चरणों की दासी हूँ। मुझे राजमहल के कैद से छुड़ा ले चलो। मैं तुम्हारी झोपड़ी को अपने स्नेह की किरणों से चमका दूँगी...।"

उसी समय राजमहल के पीछेवाले बाग में कोयल कूक उठी।

राजकुमारी आत्मविभोर हो उठी—"अहा! कितनी प्यारी लगती है कोयल की मीठी वाणी...!"

"धत्!" मैं बोल उठा—"तुम भी क्या बात कहती हो राजकुमारी! शायद अक्ल तुम्हारी हवा खाने चली गई है। वह 'मुँह में राम और बगल में छुरी' की नीति से काम लेनेवाली काली कोयल राजा को जगा रही है। वह कहती है, सँभल राजा! नहीं तो, तेरे खानदान का चिराग बुझना ही चाहता है।"

और मैंने कोयल को सम्बोधन कर कहा—"अरी कलूटी कोयल! तू चली है हम दोनों के मिलन की राह में काँटे बिछाने! याद रख, हम दोनों प्रेम दीवाने मिलकर रहेंगे।"

मगर कोयल थी जो कूक-कूककर मेरे क्रोध की आग में घी डालती जा रही थी। मैंने कहा—"मेरी प्रिये, बन्दूक हाथों में पकड़ा दो, मैं इस मरदूद को 'टें' बोला दूँ!"

और राजकुमारी के चेहरे का रङ्ग फक हो गया। उसने मेरे मुँह पर हाथ रख दिया।

"बस! तुम बड़ी डरपोक हो। क्या हुआ जो मुँह पर हाथ रख दिया?"—मैं छिटककर अलग जा खड़ा हुआ।

वह और डर गई। मुँह पर लगातार अँगुलियाँ रख-रखकर चुप रहने का सङ्केत करती हुई बोली—"किसी की परछाई दीख पड़ी थी।"

"हे भगवान्! शेर की परछाईं से डराती हो। धिक्-धिक्!" मैंने नाक सिकोड़ी।

और वह मुझसे आज्ञा लिये बगैर कमरे से बाहर हो गई। थोड़ी देर बाद जब वह लौटी, बोली—"पिताजी के कानों में खबर पहुँच गई। माँ ने तुम्हें देख लिया था।"

"उससे क्या हुआ?"—मैंने लापरवाही से कहा।

"पिताजी ने महल के चारों ओर पहरा बैठा दिया है। स्वयं बन्दूक लिये वे अपने कमरे में बैठे हैं।"—राजकुमारी भय से व्याकुल हो रही थी।

"बस, मेरे हाथों में ढाई हाथ की एक तलवार पकड़ा दो, सबको गाजर की तरह काटता निकल जाऊँगा, जैसे अंग्रेजों को काटते हुए झाँसी की रानी निकल गई थी।"—मेरा लहू गरम हो उठा था।

"तुमने भङ्ग का गोला तो नहीं खा लिया है?" राजकुमारी ने अचरज से पूछा।

"भङ्ग का गोला निगला तो है, तुम्हें क्या?" मैं झुँझला पड़ा।

फिर तो वह पाँव पर गिर पड़ी और अपने आँसुओं से मेरा पाँव भिगोने लगी। बोली—"साड़ी पहन लो और सदर दरवाजे से निकल जाओ, किसी को शुबहा न होगा, सभी यह समझेंगे कि कोई दासी है।"

मैंने उसे फटकारा—"क्या बकती हो, मैं क्या हिजड़ा हूँ, जो मरद होकर औरत का रूप बनाऊँ?"

उसने कहा—"समय पड़ने पर गदहा को भी 'काका' कहना पड़ता है। अर्जुन को भी 'बृहन्नला' बनना पड़ा था।"

उसके जवाब से लाजवाब होने पर भी नाक कटने के भय से मैं उसे अँगूठा दिखा रहा था। मगर अँगूठा चूमकर उसने मुझे साड़ी पहना ही डाली।

उसके शृङ्गार करने के बाद जब मैं आईने के सामने खड़ा हुआ तो स्वयं मुझे सन्देह होने लगा कि मैं मर्द हूँ या औरत ?....

तीसरे दिन मन्दिर के निकट बाग में मिलने का वचन लेकर उसने धड़कते हृदय से बिदा किया।

मस्ती की तरङ्ग में झूमता हुआ, पाज़ेब बजाता मैं राजा साहब के सामने से निकला। राजा साहब को गुमान भी न हुआ कि उनका शिकार सामने से निकल गया।

रात बड़ी तेजी से भाग रही थी। पौ फट रही थी। मुझे भय हुआ, कहीं कोई इस वेश में देख ले तो। सर पर बँधे कपड़े को नोच फेंका। चोली को फाड़कर टुकड़े बना दिये। अब याद पड़ा, अपने कपड़े तो मैं राजकुमारी के कमरे में ही छोड़ आया।....

'धाँय' तभी सनसनाती हुई गोली मेरे कान के पास से निकल गई।

मैं चौंक पड़ा। पीछे मुड़कर देखा तो राजमहल से कुछ दूर पर मैं खड़ा था।

फिर 'धाँय' की आवाज हुई और मैं भय से जमीनपर गिर पड़ा।

फिर तो गोलियाँ बरसती रहीं और मैं सर पर पाँव रखकर भागा और बगल के एक बगीचे में घुस गया।

पेड़ों की ओट में छिपता हुआ मैं एक निर्जन स्थान में पहुँचा और दिन भर वहीं छिपकर रात होने की बाट जोहता रहा।

लम्बी प्रतीक्षा के बाद बहुत ही कठिनाई से रात आई और मैं उसकी काली चादर में लुकता-छिपता अपने विश्रामगृह में सही सलामत पहुँच गया।....

फिर घर से जो मैंने बाहर 'कदम' निकाले तो राजकुमारी के सामने ही रुके।

राजकुमारी बड़ी आकुलता से मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। उसके हाथों में एक छोटी-सी सन्दूकची थी। मैंने पूछा—"इसमें क्या है ?"

उसने कहा—"अशर्फियाँ और मेरे आभूषण !"

मुझे बड़ा विस्मय हुआ। पूछ दिया—"इनका होगा क्या ?"

वह बोली—"यह अज्ञातवास में हमलोगों के काम आयेंगे !"

मेरी आँखें चढ़ गयीं। पूछ बैठा—"तो तुम यह चाहती कि मैं चोर की तरह मुँह छिपाता फिरूँ ?"

वह तो दीवानी हो रही थी। मेरे पाँवों पर गिर पड़ी। बोली—"मैं तुम्हारे बगैर जी नहीं सकूँगी।"

"धत् ! जियोगी कैसे नहीं ! मुझे मत फुसलाओ।"—मैंने झट उत्तर दिया और पाँव उसके हाथों से छुड़ा लिया।

उसने कहा—"निर्दय, तुम्हें मेरे हृदय का पता नहीं।"

मैंने कहा—"पता क्यों नहीं है, तुम अपने बाप के मुँह में कालिख पोतना तो चाहती ही हो, मुझे भी चोरी का माल हड़पने की शिक्षा दे रही हो।...."

वह क्षुब्ध होकर बोली—"जल्द भाग चलो, मेरी खोज हो रही होगी। हम दोनों स्वजातीय हैं, विवाह कर लेंगे।"

मैं बोल उठा—"मगर मेरा विवाह तो हो चुका है। एक लड़की के पिता होने का सौभाग्य भी मुझे प्राप्त है।"

वह तड़प उठी। मुँहपर तमाचा लगाकर बोली—"दगाबाज !"

मैंने भी उसे दो लात मारकर कहा—"चुड़ैल-डायन ! और वह नागिन की तरह फुफकारती हुई चली गई....।"

हें-हें-हें-हें....हँसकर कहानी समाप्त होने की सूचना दी श्रीयुक्त बोतलानन्द ने।

मि० सिंह ने लम्बी साँस ली। बोले—"तो अब मुझे स्वीकार करना ही पड़ा कि 'बोतलानन्द' ने भी इश्क किया था।"

"यों कहिये !"—दीपचन्द नाथ बोल उठे—"पत्थर में भी जोंक लगी थी।"

"अच्छा गुरुदेव, अब आज्ञा दीजिए।" कहकर बोतलानन्द उठ खड़े हुए।

"बैठिये, बैठिये। तास खेलकर जाइएगा।" दीपचन्द्र नाथ ने तपाक से कहा।

"नहीं, भोजन बनाकर रमचेलवा बैठा होगा!" कहकर धोती सँभालते हुए बोतलानन्द अपने डेरे की ओर चले और मित्र मण्डली के सदस्य अपनी बत्तीसी चमकाने लगे।

४
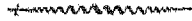
दूसरे दिन दीपचन्द्र नाथ की बैठक में पहुँचा तो वहाँ का रङ्ग निराला दीख पड़ा।...दीपचन्द्र नाथ और उनके साले के साथ ही 'बोतलानन्द' भी वहाँ उपस्थित थे।

"जय हिन्द!"—दीपचन्द्र नाथ के साले श्यामचन्द्र ने पान चबाते-चबाते कहा और टप् से पान की पीक की कुछ बूँदें उनके सुफेद कपड़े पर चू पड़ीं।...

बोतलानन्द ताबड़ तोड़ केले छील-छीलकर मुँह में झोंकते जाते थे। उनके मुँह में इतने केले पहुँच गये थे कि 'जय हिन्द' कहने का उनका प्रयत्न व्यर्थ होकर रहा। अचानक खाँसी आई और बोतलानन्द के मुँह-चक्की में कुचले हुए केले भच् से उनके रोकते रहने पर भी जमीन पर गिर पड़े।

"भोलाशङ्कर, पान की पीक छुड़ाने के लिए नीबू का एक कतरा अथवा दही का पानी लेकर दौड़ो!"

...श्यामचन्द्र का आदेश था अपने भानजे पर।

"...राख भी लिये आना!"...

दीपचन्द्र नाथ घृणा से नाक सिकोड़ लिये थे।

और मैं भी घृणा के झुके से बचा न रहा। 'बोतलानन्द' कहीं बुरा न मान जायँ इस भय से मुस्कुराते हुए मैंने कहा—

"इतनी जल्दी किसलिये महाराज ? कहीं आग तो लगी नहीं थी जो केलोंपर अपनी फुर्ती की आजमाइश कर रहे थे !..."

"भय था, कहीं आप पहुँच न जायँ !...."

बोतलानन्द ने भी दाँत निपोर दिये ।

"हें, हें, केले की कमी नहीं, आप मन भर खा सकते हैं मगर जरा धीरे-धीरे...." श्यामचन्द्र बोल उठे थे । और थोड़ी देर बाद जब सभी चाय की प्याली अधरों से चूस रहे थे, बोतलानन्द ने कहा—"हमलोगों की जाति में साले का इस तरह स्वागत नहीं होता । घन्टे भर में दर्जनों की संख्या में पान के बीड़े चबवा-चबवाकर साले से थुकवा दिये जायँ, अनगिनत चाय की प्यालियाँ सालेपर न्योछावर कर दी जायँ, गैक्रेट का पैकेट सिगरेट 'साला' फूँक बैठे—ना बाबा, ऐसा अँधेर हम लोग बरदाश्त नहीं कर सकते ।...."

दीपचन्द्र नाथ मुस्कुरा पड़े । बोले—"बोतलानन्द, जिस पत्तल में खाय उसमें छेद नहीं करना चाहिए । आपने जितने केले खाये वे सभी इस महापुरुष द्वारा लायी गयी सौगात में से थे ।...." कहते-कहते उन्होंने अपने साले की ओर सङ्केत किया ।

बोतलानन्द के विरुद्ध सर उठाना और बर्रे के छत्ते में ढेला मारना दोनों एक समान है ।

बोतलानन्द को लगा जैसे किसी ने उन्हें चाँटे लगा दिये । वे झल्ला उठे । बोले—"गुरुदेव, मैं तो खरी कहूँगा—चाहे आपको मेरी बातें कड़वी लगें या मीठी । जोरू के भाई की गुलामी वही करता है जो जोरू का गुलाम होता ।...."

श्यामचन्द्र की बोली बन्द हो गई ।

दीपचन्द्र नाथ मुँह खोलने ही वाले थे कि मैंने उन्हें चुप रहने का सङ्केत किया ।

मेरा आशय समझ वे मुस्कराते हुए, मेरी ओर पान के बीड़े बढ़ा दिये।

"बोतलानन्द महाराज, कुछ प्रश्नों की बौछार के लिए मुझे इजाजत देते हैं आप?..." मैं बोतलानन्द की ओर मुखातिब हुआ—पान के बीड़े मुँह में रखकर।

"आपके लिए सात खून माफ है।...." बोतलानन्द भावावेश में बोल गये।

"इसलिए कि 'थोथा बसन्त' हैं।"—दीपचन्द्र नाथ बोल उठे।

"जो हो, मैं बोतलानन्द की महती कृपा के लिए चिर आभारी रहूँगा।....कहकर मैं 'बोतलानन्द' का मुँह निहारने लगा।

और यह जान कि वे मेरे प्रश्नों की बाट देख रहे हैं, मैंने कहा—"आप लोग, मतलब यह कि, 'बारी' और उसके आस-पास वाले, अपने सालों का स्वागत किस प्रकार किया करते हैं?...."

"सबका 'जमा खर्च' तो मेरे पास 'चित्र गुप्त' की तरह नहीं है, हाँ, आप मेरे विषय में पूछें तो बतला सकता हूँ।...."

बोतलानन्द कुरसीपर पलथी लगा बैठे।

"मुझे तो केवल आपसे मतलब है। आम खाने से मतलब या पेड़ गिनने से?...."

"बहुत ठीक!" बोतलानन्द ने कहा और खखारकर गला साफ किया, बोले—

"अव्वल तो न मैं ससुराल जाता हूँ और न साले ही मेरे दरवाजे पर झाँकी देते हैं। अगर भूले भटके वे मेरे सामने पहुँच जायँ तो मैं जूते हाथ में लेकर उनसे बातें करूँ।"

"आखिर उनके विरुद्ध खोपड़ी में गुस्सा जमाकर रखने का कारण देवता?...." मैं बड़ी मुश्किल से अपनी हँसी का गला घोंट वाणी को संयत रख सका था।

"कारण तो अनेक हैं। रहिये, मैं उसे सिलसिले से सुना दूँ।...." बोतलानन्द के चेहरे के भाव देख मैं ताड़ गया, वे शीघ्र ही कोई कहानी उगलने जा रहे हैं। मैंने सपाक् से कहा—

"हाँ, हाँ, अवश्य सुनाइये। यह भी क्या बात कि आप कहानी सुनायें और हम कान में उँगली डाल लें!..."

बोतलानन्द उपस्थित महापुरुषों की उत्सुकता जगाकर, कहने लगे—

"मेरे छोटे साले की ससुराल से बारात लौट चुकी थी मगर मैं ससुराल में ही अपने अन्य पाँच साढुओं के साथ डटा हुआ था।"

"मेरी पत्नी अपने सभी भाई-बहनों के बाद धरती पर अवतरित हुई थी इसलिए परिवार के प्यार पर उसका एकछत्र साम्राज्य था।"

"मेरी सास तो मुझपर अपना प्यार लुटाते नहीं अघाती थीं। आखिर मैं उनका अन्तिम 'दामाद' था न!"

"मेरे अन्य साढ़ू भोजन कर लेते तब आँगन में मेरी बुलाहट होती।"

"अन्य साढुओं को भोजन के बाद ही हाँककर बैठके में घुसा दिया जाता था मगर मुझे साली-सरहजों के बीच फुदकने, चहकने के लिए साँड़ की तरह छोड़ दिया जाता था।"

"मेरे साढ़ू मेरे इस सौभाग्य पर निश्चय ही मन-ही-मन कुढ़ा करते थे।" हवेली से बाहर निकलते ही वे लम्बी साँसें ले-लेकर कहते थे—

"काश! मैं 'बोतलानन्द' होता!...."

"शादी तो सभी की होती है मगर ससुराल का सुख किसी-किसी को प्राप्त होता है।...."

"अब तक तो मैं यह समझता रहा कि बड़ा 'दामाद' बनना सौभाग्य की बात है मगर आज मालूम हुआ मैं धोखे में था।...."

"और भी न जाने क्या-क्या उन दिलजलों के मुँह से निकलता रहता था मगर मैं उनकी बातों पर कान नहीं देता था।"

"एक दिन मेरी सास ने कहा—मैं तो तरसती ही रह गई कि 'बबुआ' मुझसे कुछ माँगते !...."

"उस समय मैं साली-सरहजों के घेरे में था।"

"एक सरहज बोली—'हाँ, इन्हें कभी कुछ माँगते नहीं देखा।' अन्य 'मेहमान' इनके जैसे 'चुप्पा' नहीं हैं। वे तो कदम-कदम पर रूठते हैं, मुझे 'घोड़ा' चाहिए, तो मुझे 'ऊँट' चाहिए....।"

"उनके रूठने से ही क्या हुआ ? घोड़ा और ऊँट की तो चर्चा ही क्या जब उन्हें मनाने के लिये एक 'पिल्ला' तक नहीं दिया गया।....और देना तो अलग जुबान से वादा भी नहीं किया गया।...."

"तर्क तो मेरा जबरदस्त था मगर वहाँ सभी वकीलों के कान काटने वालियाँ ही बैठी थीं।..."

"सरहज ने मुस्कुराहट के तीर छोड़ते हुए कहा—"आपका औरों के साथ मुकाबला ही क्या ! आप 'आप' हैं और अन्य 'अन्य'।...."

"धत्तेरे की।........मुझमें क्या लाल जड़े हुए हैं ?...."

मेरे मन की प्रसन्नता ओठों पर झलक ही गई।

"लाल ही नहीं आप में सुरखाब के पर भी लगे हैं।"

सरहज हँसी रोकती हुई बड़ी ही भली लगी।

"धन्यवाद ! मुस्कुराकर मैंने उन्हें छोटी-सी सलामी दी।"

" 'माल है !' दूसरी सरहज कहकर हँस पड़ी।"

" 'बोतल का टुकड़ा है।' एक साली खिलखिला उठी।"

फिर तो खी-खी-खी-खी....ही...ही...ही...ही....मतलब यह कि सभी ने बारी-बारी हँसी की किस्मों का मनोरञ्जक ढङ्ग से वर्णन किया।

"मेरी सास जो जबरन अपनी हँसी को दबा रही थीं, आँखें तरेरती

हुई बोल उठीं—तुम लोगों के मुँह में आग। मेरे बच्चे को कुढ़ा रही हो।..."

"तराजू पर तौला जाय तो हाथी के बच्चे से भी बाजी मार ले जायें और आप कह रही हैं माँ जी, कि मेहमान 'बच्चे' ही हैं।...."

सरहज सास पर बरस पड़ी थी।

"अभी तो 'दूध के दाँत' नहीं टूटे हैं मेहमान के।....गाँव झूठ थोड़े ही कहता है।...."

साली, भाभी से निबटने लगी।

"देख रही हूँ, छोकरियाँ मेरे 'बच्चे' को मेरे पास से उठाकर रहेंगी।...." सास का क्षुब्ध स्वर था।

"राम राम, आपके 'लाड़ले' यहाँ से हमारी मर्जी के बगैर रस्सी तुड़ाकर भाग नहीं सकते माँ जी, आप विश्वास रक्खें।..." सरहज की कुटिलता पूर्ण मुस्कान थी।

"अच्छा, चुप रहो!"—सास की मीठी फटकार थी।

"लीजिए, हम सब मुँह में दही जमा लेती हैं।...." सरहज का विनोद पूर्ण स्वर था।

"भाभी, तुम सब का जिम्मा मत लो! मेहमान, जब तक यहाँ रहें हम अपना मुँह सी लें—यह तो नहीं होगा। कहीं बेचारे रूठ गये तो क्या होगा!...." साली ने कृत्रिम भय का प्रदर्शन किया

"मेहमान रूठेंगे—ऐसा हमारा सौभाग्य कहाँ? गाल फुलाने पर पूरे 'हनुमान' नहीं दीख पड़ें तो कह देना!...." और दूसरी साली पर जैसे सचमुच ही सास बिगड़ उठी। बोली—"चुप रह री मुँह-फट!..."

और मेरी ओर मुखातिब हो धीमे से चुपकी वाणी में उन्होंने प्रार्थना की—"बेटा, साली सरहज की बातों को बुरा नहीं मानते।..."

"बुरा माने मेरा दुश्मन !...." मैंने उनके मुँह की बात झपटकर छीन ली।

"तो इस बार कुछ माँग लो बेटा !...." सास गिड़गिड़ा उठी।

"भाभी को माँग लो मेहमान !...." साली ने प्रार्थना की।

"और सरहज बोल उठीं—मेरी पाँच ननदों में सब से चुलबुली यही हैं, (संकेत उस 'साली' की ओर था।) माँ जी से इन्हें अवश्य माँग लीजिए ! आपकी नाक में दम किये रहेंगी।...."

"कतरनी की तरह जुबान चलाने वाली साली का मुँह क्यों बन्द रहता ? उसने तड़ से कहा—माँ का मुझपर अब अधिकार ही क्या है ? वह तो मुझे बहुत पहले ही किसी को दान कर चुकी है।...."

"मुँहजली, चुप भी रहेगी ?" सास झुँझला उठीं।

"अपनी पतोहू को तो डाँटती नहीं माँ, मुझपर ही मन का गुबार उतारे जा रही हो। पराया धन हूँ न !...."

रूठने का अभिनय सफल करने के प्रयत्न में साली नाक से बोली थी।

"अच्छा, नाक से सितार मत बजा !...."

"लो, साँच बात पर तुम्हें बुरा लग गया। मैं नाक से सितार बजाती हूँ, मैं 'मुँहजली' और 'मुँहफट' हूँ। अब तो तेरी छाती की आग ठण्ढी हो गई ?...."

"गुस्से को निगल जाइए !"—मैंने साली के लिए हाथ जोड़े।

"आप उसके मुँह मत लगिए ! उसे आपकी पगड़ी उछालते देर न लगेगी।" सास ने चेतावनी दी।

मैंने खोपड़ी को टटोलते हुए कहा—"मेरी खोपड़ी पर पगड़ी ही कहाँ है जो उसके उछालने का भय मानूँ।"

"और साली का क्रोध कापूर की तरह उड़ गया। वह भी अपनी बहिनों और भाभियों की हँसी में शामिल हो गई।

सास ने हँसी निगलकर कहा—"मेरी अभिलाषा भी पूरी कर दो बेटा ! मेरी उमर पचास से ऊपर पहुँच गई । न जाने कब यमदूत लट्ठ लिये प्राण हरने पहुँच जायँ । मरने पर पश्चात्ताप ही रहेगा कि मैं अपने प्यारे दामाद से गिड़गिड़ाती रही कि 'कुछ माँग ले' मगर उसने जुबान नहीं हिलाई ।..."

"माँ जी, हाथ पसारना बड़ा ही नीच कर्म है । भीख माँगने से तो मर जाना भला !...."

सास ने मेरे मुँह पर हाथ रखकर मुझे चुप करा दिया । बोली—"बेटे, मरने की बात जुबान पर नहीं लाई जाती । मरे तेरा दुश्मन ! तू लाख बरस से अधिक समय तक जीवित रह !..."

और उनकी जिद के आगे सर झुकाकर मैंने कहा—"अच्छा, तो मुझे एक बी. एस. ए. सायकिल खरीद दीजिए, जिस पर बार-बार चढ़ते-उतरते मैं आपके नाम की माला जपा करूँ । एक 'साइमा' की घड़ी भी दे दीजिए जिसे कलाई में बांधे फिरूँ और मित्रों के पूछने पर कहूँ—यह मेरे सास की निशानी है...."

मैं कुछ और माँगें रखने ही वाला था कि सास के चेहरे पर भयानक रूप से मुर्दनी का आक्रमण देख चुप हो गया । मैं समझ गया, दाल में कुछ काला है और दूध में खटाई पड़ने ही वाली है ।

"बेटा !"—सास ने थूक निगलकर सूखे गले को तर करते हुए कहा—

"तुम्हारी माँग पूरी करना तो हमारे लिए 'टेढ़ी खीर' है । दस-पाँच रुपये की चीज माँगते तो उसे दे भी सकती थी !...."

"इसलिए मैं मुँह बन्द रखने में ही भलाई देख रहा था । अब जो मुँह खुल गया तो मेरी माँगें पूरी करनी ही पड़ेंगी !"—

—मेरे माथे पर बल आ गये ।

"घड़ी और सायकिल के लिए कितने रुपये कुर्बान करने पड़ेंगे ?"—सरहज पूछ बैठी।

"अधिक नहीं, पाँच-छः सौ के बीच काम चल जायगा।...." मैंने कहा।

"तो गाढ़े का थैला सिलवा लीजिए !"—

सरहज की हँसी से छाती के भीतर छेद हो गया।

"पहले आईने में मुँह देखने की विधि पूरी कर लीजिए !" साली ने मेरे जख्म पर मिरचे की बुकनी छिड़क दी।

"और मन ही मन मैंने दृढ़-सङ्कल्प किया—आज बगैर कुछ कर गुजारे दर से नहीं हटूँगा।"

लहू का घूँट पीकर बोला—"तो मेरी माँग पूरी नहीं होगी ?"

"सास पर तो जैसे सौ घड़े पानी पड़ गये थे। वह भींगी बिल्ली बनी बैठी थीं।

"मैंने प्रश्न किया था सास से मगर उनकी सिट्टी गुम देख सरहज ने मुस्कुराते हुए कहा—

"पहले थैला सिलवा लाइए तो रुपये माँगियेगा !"

"मैंने सोचा, सम्भव है सरहज व्यंग्य से काम नहीं ले रही हो, इसलिए मैं बोल उठा—"पाँच सौ रुपये के लिए थैले की आवश्यकता ही क्या ? उसे बड़े मजे से जेब के हवाले कर सकता हूँ।"

"तो आईने में झट मुँह निहार लीजिए !"—साली खिलखिला उठी।

"अब मेरी समझ में साफ-साफ आगया कि दोनों मुझे बना रही हैं।"

"तो यह लोग भी क्या समझेंगी कि 'बोतलानन्द' से पाला पड़ा था। अचानक उठ खड़ा हुआ और धरती पर लात मारकर मैंने कहा—मेरी पत्नी को विदा कर दीजिए ! मैं क्षण भर ऐसे घर में नहीं ठहरूँगा जहाँ 'देना लेना साढ़े बाईस' और केवल बात ही भुगतान होता हो।"

"मन का बुखार उतारने का इससे बढ़िया नुस्खा मुझे दिमाग पर बहुत जोर लगाने के बाद भी हाथ नहीं लगा था।

"बेटा !..."

"बस, अब जान मत खाइए !" सास को मैंने अपना अन्तिम फैसला सुना दिया—"बेटी को मेरे पीछे लगा दीजिए या जिन्दगी भर उसे अपने गले में ढोल की तरह लटकाये रहिए !...."

भीष्म की तरह मेरी आवाज सुन चहकनेवालियों के होश ठिकाने लग गये।

उसी समय मेरा छोटा साला पहुँच गया। उसने कहा—"भाभी, मेहमान को क्या हो गया है ?"

सरहज ने उत्तर दिया—"सर पर गुस्से का भूत सवार है।"

"भूत तो लबादे की मार खाये बिना नहीं भागता। डर लगता है, भूत उतारने में कहीं मेहमान अङ्गारों पर नहीं लोटने लगें !...."

साले ने मुझे गुदगुदाकर हँसाने का प्रयत्न किया।

"मैंने उसके सिर पर एक चपत लगाकर कहा—"खबरदार, अलग ही रहो।"

"उसका मुँह लाल हो गया।...."

सरहज ने मुँह बनाकर कहा—"छोटे बाबू, 'अगिया बैताल' से अलग रहना ही मुनासिब है।"

साले ने दाँत किटकिटाते हुए कहा—"बहनोई के रिश्ते का ख्याल नहीं रहता तो आज गरदन का मैल छुड़ा देता।...."

"साला ! तू क्या गरदन का मैल छुड़ायेगा। टाँग पकड़कर फेंक दूँगा तो पतङ्ग की तरह आकाश में पहुँच जायेगा !...."

"बस, जुबान में लगाम लगाइए मेहमान !...." साले ने मुट्ठी बाँध ली।

"उसकी मुद्रा देखकर मुझे यह समझते देर न लगी कि वह चुनौती दे रहा है।...."

"बचपन से किसी की लाल-पीली आँखें देखकर चुप रहने की आदत न थी इसलिए साले की ललकार से लहू क्यों नहीं खौल उठता ?"

"मैंने उत्तर में केवल एक झापड़ जमा दिया।"

"वह आवेग नहीं सँभाल सकने के कारण मेरे कदमों को चूमने लगा।"

"उसे झिड़ककर, मैंने उपहास के तीर चलाते हुए कहा—"बकरी चली थी बाघ का मुकाबला करने। तौलकर जो एक धौल जमा दूँ तो उठकर पानी नहीं पी सकते !..."

उसे जैसे मिर्गी आ गई। उसने चीख-चीखकर कहा—"भाभी, तनिक मेरे हाथों में तलवार की मूठ पकड़ा दो ! कसम तुम्हारी 'बोतला-नन्द' का सर धड़ से अलग न कर दूँ तो मैं मर्द नहीं तुम्हारी ही तरह 'औरत' कहलाऊँ ! तब तुम मेरी हाथों में चूड़ियाँ पहना देना !...."

"और हवेली में घुसते हुए मेरे ससुर के कानों में भी मेरे साले की आवाज मोजर बनकर घुस पड़ी थी।

"घसेरे की !...." वे तो मुझसे भी गुस्सैल निकले। उन्होंने न आगे देखा और न पीछे मगर पाँव से पनहीं निकाल लगातार साले के सिरपर बरसाते हुए 'बीस' तक की संख्या गिन गये। फिर स्वर जहर में भिगोकर उबल पड़े—

"नमकहराम, मैंने तुझे क्या इसीलिए दाल-भात, दही-दूध खिलाकर गबद्दे से भी बड़ा बना दिया कि मेरी ही बेटी को तू वैधव्य का दुःख देने का नीच विचार रखेगा ? जा, दूर हो जा आँखों की रोशनी से।..."

"और साला आवेश में घर से बाहर निकल गया।"

"फिर एक-एक जिरहें करके उन्होंने मेरे रूठने के कारण का पता

लगाया। उसके बाद उनके लम्बे-चौड़े शरीर का रुख आहिस्ते से मेरी ओर हो गया। वे मुस्कराते हुए बोले—"मेरे प्यारे बेटे, आजकल किसी प्रकार हम पेटभर भोजन जुटा लेते हैं—इसे गनीमत समझो।...अपनी माँग रख रखो जब हमारे दिन लौटेंगे तब तुम्हारी माँग पूरी होकर रहेगी। ..."

"पिताजी", मैंने कहा—"केवल बातों से पेट नहीं भरेगा। दो में एक ही बात होगी या तो मेरी माँ जी, मेरी माँग पूरी करें अथवा अपनी लड़की को मेरे पीछे लगा दें!..."

ससुरजी क्षणभर मौन रहकर बोले—'हे बेटा, बेटी तो पराया धन है फिर उसपर मोह कैसा? तुम जब चाहो बुला ले जा सकते हो।..."

"उसी समय मेरे चारों साले लट्ठ लिये आ धमके। सभी शेर की आँखों से मुझे घूर रहे थे।...'

"उन्हें देखते ही मेरे शरीर में आग लग गई।" मैंने कड़ककर कहा—"मैं आज ही बिदाई चाहता हूँ।"

ससुरजी बोले—"बहुत अच्छा! तुम्हारी इच्छा पूरी होगी।..." और उन्होंने मेरे मझले साले से कहा—"खेदारन, एक बैलगाड़ी का प्रबन्ध कर दो!"

"नहीं, मैं पैदल ही बुला ले जाऊँगा।"—मैं बोल उठा।

"सवारी के पैसे मैं दे दूँगा—तुम निश्चिन्त रहो!"—ससुरजी ने पीठपर हाथ रखकर आहिस्ते-आहिस्ते कहा।

"वाह, मेरे पास क्या पैसे नहीं हैं? मुझे आप 'भिखमङ्गा' समझने की भूल न करें!" मैं तुनककर बोला।

"आप अपने घर के नवाबजादे हैं मगर मेरी बहिन बगैर सवारी के नहीं जा सकती।"—मेरा एक साला गुर्रा उठा।

"वाह, उसपर आपका हुक्म नहीं चलेगा, वह मेरे चरणों की दासी है।....

पत्नी किवाड़ की ओट में खड़ी थी। मैंने उसकी ओर मुँह करके कहा—"देवीजी, तुम्हें मेरे साथ पैदल चलना स्वीकार हो तो चल सकती हो, नहीं तो नैहर में जीवन गुजारने की अभिलाषा हो तो उसे पूर्ण कर सकती हो।"

"और सालों ने लहू का घूँट पीते हुए देखा—उनकी बहिन अर्थात् मेरी पत्नी घूँघट निकाले मेरे पीछे आ खड़ी हुई।"

"मैंने कदम बढ़ाये।"

"साले लट्ठ लिए राह रोक खड़े हो गये।"

सभी ने एक स्वर से कहा—"तन में जान रहते हम बहिन को तुम्हारे साथ पैदल नहीं जाने देंगे !...."

"अब तो मेरे लिए शान्त रहना अपने वंशधरों के मुँह में कालिख पोतवाने के समान था।"

"तड़पकर मैंने एक को एक घूँसा लगाया, दूसरे पर लात चला दी, तीसरे को थप्पड़ लगा दिया और चौथे से लट्ठ छीन मैं घर के बाहर निकल पैंतरा बदलने लगा।"

"यह सब पलक झपकते-झपकते हो गया।"

"बूढ़े ससुर हक्का-बक्का खड़े रह गये। बुढ़िया सास के प्राण सूख गये।"

"चारों साले सप्त महारथी की तरह मुझपर टूट पड़े और मैं 'अभि-मन्यु' के समान उनके छक्के छुड़ाने लगा।"

"लाठी की खटखटाहट सुन गाँववाले लाठी ले-लेकर दौड़े मगर साले-बहनोई की लड़ाई देख अवाक् हो दाँव-पेंच देखने लगे।"

"उस दिन जूझते-जूझते साले-बहनोई यमलोक सिधार जाते अगर बीच में मेरे चचेरे ससुर नहीं टपक पड़ते।"

"वे निस्सन्देह बड़े ही समझदार निकले। झगड़े की जड़ का पता लगाकर, उन्होंने साइकिल और घड़ी के रुपये स्वयं देने की मुनादी करायी और सारा दोष मेरी सास और लड़ाकू स्वभाववाले मेरे मूर्ख सालों पर थोप दिया।"

"उस दिन से 'साले' मुझे फूटी आँखों नहीं सुहाते।...."

"धर्मावतार! धन्य हैं आप।"—दीपचन्द्र नाथ के साले श्याम-चन्द्र ने दोनों हाथ 'बोतलानन्द' के सम्मान में जोड़ दिये थे।....

५

इसके बाद ऐसा हुआ कि कहानी सुनाये बगैर न बोतलानन्द मुँह में 'रात का भोजन' डालना पसन्द करें और न कहानी सुने बिना 'बोतलानन्द' को छुट्टी देना 'मित्र-मण्डली' के सदस्य पसन्द करें। अभिप्राय यह कि दोनों तरफ आग बराबर लगी थी।

'बोतलानन्द' अपनी जीवन-कहानी सुनाते-सुनाते ठण्डे न पड़ जायँ इसलिए उनके गुरुदेव उनके कदम रखते ही, गरम चाय से भरी प्याली उनके हाथों में पकड़ा देते थे। और कहानी सुनाने के लिए वे 'मूड' में आ जायँ इसलिए मैं शब्दों के ढेले का निशाना उनकी खोपड़ी को बनाता था। जब देखा कि चाय की अन्तिम घूँट सुड़ककर, बोतलानन्द महाराज 'चाय की प्याली' जमीन पर रखने ही वाले हैं तभी मैंने विशेष ढङ्ग से स्वर में उतार-चढ़ाव लाकर, दीपचन्द्र नाथ से कहा—"मित्रवर, आज मैं आप लोगों को पति और पत्नी के प्रेम की ऐसी लाजवाब कहानी सुनाऊँगा जिसे सुनकर, आप केवल दाँतों तले अँगुली ही नहीं दबायेंगे बल्कि घंटों अवाक् हो पत्थर की मूरत की तरह बैठे रहने के लिए मजबूर हो जायेंगे।"

"वाह बाँचावसन्त, खूब याद दिलायी।"....

बोतलानन्द उछल पड़े। बोले—"इस समय मुझे अपने गाँव के मेले की याद आ गई।....सुनिये गुरुदेव!...."

"पहले मेरी कहानी तो सुन लीजिये!"—मैंने उन्हें टोका।

"धत्तेरे की!....आपकी कहानी भी भला क्या कहानी होगा! चुप

रहिये !''—बोलतानन्द जैसे युद्ध करने की तैयारी करते-करते बोल पड़े थे।

''हाँ, हाँ; आप चुप रहें दीपचन्दजी,...बोलतानन्द के मुँह से कहानी का मजा कुछ और ही आता है। शुरू कीजिए महाराज !

दीपचन्द्र नाथ ने मुस्कुराहट रोकने का प्रयत्न करते हुए कहा।

मैं हँसी छिपाने के लिए मुँह फेरकर रूमाल से मुँह पोंछने लगा।

बोलतानन्द जैसे मुँह बन्द न रखने की कसमें खा बैठे। बोले—''साल में एक बार मेरे गाँव के पास ही बड़े मैदान में बड़ा भारी मेला लगता है।''

''उस साल मेरी पत्नी पहली बार अपनी ससुराल पहुँची थी और सुहागरात के कुल आठ दिन ही गुजरे थे।''

एक रात माँ ने कहा—''बेटे, घर की रखवाली करना, हम लोग मेला देखने जा रही हैं।...''

मैंने देखा—''उनके साथ चाची और मेरी बहनें भी हैं। मन ही मन खुश हुआ, घर में हम दोनों पति-पत्नी के अतिरिक्त कोई न होगा। हम जीभर आजादी का सुख लूट सकेंगे। पत्नी भी आज खुलकर हँस बोल सकेगी।....''

मुझे देख माँ बोल उठी—''बोलता क्यों नहीं ? तू तो रोज ही मेले का चक्कर लगाता है। दो-चार घंटे घर में रह जायगा तो कौन-सा घाटा लग जायगा ?''

मैंने कहा—''माँ, तुम तो नाहक मन में कुढ़ रही हो। मैं कब कह रहा हूँ कि घर से भाग जाऊँगा। कभी आज्ञा टाली है तुम्हारी....?''

''अच्छा, तो सावधान रहना ! बहू को अकेली छोड़कर न जाना ! बहू लम्बी-चौड़ी हवेली में डरेगी।....''

और माँ के मुँह की बात छीनकर मैंने कहा—''तुम घर से बाहर कदम निकालोगी भी या मुझे उपदेश देने में ही रात गुजार दोगी ?....''

"माँ बड़बड़ाती हुई मेरी चाची और बहनों के साथ मेले की ओर चल पड़ी।"

"मैं उछलते हृदय को सँभाले दरवाजे पर आ खड़ा हुआ। बाहर 'महँगू' लट्ठ बगल में रक्खे 'चैतन्य चूर्ण' तैयार कर रहा था।

"महँगू!"—मैंने पुकारा।

"जी छोटे सरकार!...." वह चौंककर उठ खड़ा हुआ था।

"जगे रहना!"

"जो हुक्म सरकार!"

"करवट भी बदल सकते हो....!"

"बहुत अच्छा सरकार।"

अपने पर मुझे मेहरबान पाकर महँगू के मुँह से प्रसन्नता निकल पड़ी थी।

"अपने घर में पहुँचा तो देखा, पत्नी महोदया डरी-डरी-सी बैठी थीं।

मैंने एक झटके से घूँघट हटाते हुए कहा—"अब भय कैसा मेरी रानी, घर में तो अपना राज्य है!"

"वह सहमी-सहमी फिर हाथ भर का घूँघट निकालने लगी तो मैंने साड़ी पकड़कर खींच ली।"

हूँ-हूँ...बोतलानन्द हँसकर बोले—"दुःशासन और द्रोपदी की चीर-हरणवाली घटना उपस्थित थी।"

मगर दोनों में अन्तर था। दुःशासन भरी सभा में द्रौपदी की साड़ी उतार रहा था और मैं घर के बन्द कमरे में। वह पर नारी के साथ उलझ रहा था और मैं अपनी स्त्री पर प्यार ढुलका रहा था।....

"यह क्या कर रहे हैं?"—देवी कोयल की तरह कूक उठी।

मैंने हँसकर कहा—"हाय, हाय, कहीं तुम अंधी तो नहीं?"

"आप चाहते हैं कि मेरी आँखें फूट जायें?"

"राम-राम ! कौन नर चाहेगा कि उसकी नारी टटोलकर कदम बढ़ावे !...."

"देखिए, साड़ी खुल जायगी !...." वह साड़ी अपनी ओर खींचने के लिए जोर लगाती-लगाती सावधान करने के अभिप्राय से बोली ।

"मगर कमर के नीचे साया और उसके ऊपर चोली तो रह जायगी ।" मैंने आश्वासन दिया ।

"न जाने मुझे तङ्ग करने में आपको कौन सा सुख मिलता है ।"

"जो सुख मुझे तङ्ग करने में देवीजी को प्राप्त होता है ।"

"आप वकील की तरह जिरह करते हैं ।"

"आप बैरिस्टरों के कान काटती हैं ।"

"मैं हार मान गई ।"

मैं मुस्कुरा उठा । बोला—"कुश्ती नहीं हुई तो हार की माला कैसे आपके गले में पड़ गई ?...."

और इस प्रकार हम दोनों घंटों चहकते-फुदकते रहे । अचानक मेरे मग़ज में यह सूझ उत्पन्न हुई—"काश ! हम दोनों पति-पत्नी मेम और साहब की तरह हवा खाते ।"

मैंने तपाक से पूछा—"रानी मेले में चलोगी ?"

उसकी आँखें विस्मय से फटी की फटी रह गईं । क्षणभर बाद सँभलकर बोली—"सर तो नहीं फिर गया है आपका ?"

"तुम्हारी खोपड़ी में इस सन्देह के भूत ने कैसे सर उठाया ?"—मैं विस्मय से पूछ बैठा ।

वह आवेश में बोली—"पहले-पहले ससुराल गई बहू मेले में पति के साथ भला कैसे घूम सकती है ?"

मुझे उसके भोलेपन पर बड़ी हँसी आई । हँसी रोककर मैंने उसके हाथ में हाथ डाला और दो-चार कदम आगे बढ़ते हुए कहा—"ऐसे चल सकती है !...."

"बस समझ गई तुम्हारी अक्ल घास चरने चली गई ।..."

सम्भव था मेरी शान के खिलाफ कुछ और आगे वह कदम उठा देती मगर मैंने उसे उसके कर्तव्य की याद दिला दी—"पति ईश्वर के बराबर होता है । ईश्वर पर उँगली नहीं उठायी जाती ।"

"उसने 'काली मैया' की तरह जीभ निकालकर अपनी गलती मानी और झट मेरे चरणों की धूल अपने माथे पर चढ़ा ली ।"

मैं मन-ही-मन फूला न समाया । गम्भीर स्वर में फूट पड़ा—"चलते समय मेरी नेक सास ने तो तुम्हें यह शिक्षा अवश्य ही दी होगी—पति आग में कूदने के लिए कहे तो फौरन कूद पड़ना !..."

"उसने सिर हिलाकर स्वीकार किया । पति-भक्ति के जोश ने उसे मोम की तरह पिघला दिया था ।

"तो आओ मेरे साथ, हम मेले का बहार लूटने चलें !" मेरा आदेशपूर्ण स्वर था ।"

"और मैं उछल पड़ा था खुशी से क्योंकि वह मौन रह गई थी ।"

"अपने हाथों से एक-एक कर मैंने उसके शरीर पर के सारे आभूषण उतार डाले और उसे पुरुष वेष में तैयार किया तो वह १४—१५ वर्ष के बालक के समान दीख रही थी ।"

"दरवाजे के सामने पहुँचा तो देखा, महँगू खर्राटे ले रहा था ।" दरवाजे में ताला लगा मैंने महँगू को पुकारा ।

"वह हड़बड़ाकर उठ बैठा ।"

"इस बीच मैंने श्रीमतीजी को आगे खिसका दिया था ।"

मैंने उसे 'ताली' पकड़ाते हुए कहा—"माँ के आते ही सौंप देना ! मैं मेले जा रहा हूँ ।..."

"उसपर अविश्वास करने का कोई कारण था । बचपन से ही वह मेरे यहाँ खिदमतगारी करता था मगर कभी उससे शिकायत का मौका नहीं मिला था ।"

"बरातियों की नजर हम पर न पड़े—इसलिए मैं बड़ी सावधानी से मेले का चक्कर लगा रहा था।

"हिंडोले झूलकर, हम मिठाई की दुकान की ओर बढ़े ही थे कि सामने मेरा 'लँगोटिया यार' पहुँच गया।" बोला—

"अरे, आज रात में कैसे भूल पड़े? जब से 'गौना' हुआ रात में 'सरकार' के दर्शन दुर्लभ हो गये हैं।"

"और अवसर रहता तो उससे मिलकर, मुझे बड़ी प्रसन्नता मिलती मगर पत्नी जो साथ थी! रहस्य प्रकट न हो इस भय से मैंने उससे पीछा छुड़ाने में ही भलाई देखी।"

मैंने गम्भीर आकृति बनाकर कहा—"यार, बड़ी जल्दी में हूँ। आज मुझे माफ कर दो!...."

"कौन-सी जल्दी है? मेरे जानने से कोई बाधा तो नहीं होगा....?" वह उत्सुकता से भर गया।

"बाधा कुछ भी नहीं, मगर मुझे जाने दो!"

"बड़े परेशान दीख रहे हैं सरकार! बात क्या है? परेशानी दूर करने में बन्दे से कोई खिदमत ली जा सकती है?...."

"यार साथ में आज ..."

और उसने मेरे पीछे खड़ी मेरी पत्नी की ओर देखा। अचरज से पूछ बैठा—"कौन हैं यह?...."

"जोरू के भाई।"—मैंने झट उत्तर दिया जिससे उसे सन्देह करने का अवसर न मिले।

"अच्छा, सो आप सारी खुदाई एक तरफ जोरू के भाई एक तरफ वाली कहावत चरितार्थ करना चाहते हैं!...."

"यही समझकर मुझे छुट्टी दो!"

"बहुत अच्छा यार, आप तशरीफ ले जा सकते हैं।" कहकर, उसने पत्नी की कलाई मुट्ठी में ले ली और उसे खींचते हुए बोला—"चलो,

मेरे प्यारे, आज की मेहमानदारी का कुल भार मैं स्वीकार करता हूँ....''

''हैं, हैं, इन्हें छोड़ दो !'' नाक-भौं सिकोड़ते हुए मैंने झपटकर पत्नी की कलाई अपने यार की मुट्ठी से छुड़ा ली।

''अरे वाह, 'छुई-मुई' हैं क्या जो मेरे छूते ही कुम्हला जायेंगे ?''—यार रूठता हुआ-सा बोला।

''नये-नये तशरीफ लाये हैं, मजाक करते ही आँखों से आँसू ढुलकाने लगते हैं।''—वह सचमुच ही रूठ न जाय इसलिए उससे समझानेवाले लहजे में कहा।

उसने पत्नी के चेहरे को गौर से देखते हुए कहा—''मुखड़ा तो बड़ा ही हसीन है मगर झुकी-झुकी निगाहें कहती हैं कि....''

''फिर मजाक उड़ाने लगे !''—मैंने सावधान करने के लिए कहा।

''यार, जुबान में ताला न लगाओ ! सिर पर पाग इस प्रकार बाँधे हैं जैसे ठाकुर साहब हों मगर सूरत देखने से पता लगता है कोई 'औरत' पुरुष वेश में है। सच मानो, ईश्वर ने इन्हें मर्द बनाकर बड़ी भूल की !''

''चुप भी रहोगे !''—मैंने मीठी फटकार सुनाई।

''सभी सरकार के 'जोरू-माई' की तरह 'चुप्पा' हो जायँ—आप यही चाहते हैं क्या ?....'' वह मुस्कुरा उठा।

''मुँह फट !''—मैंने उसके सिर उपाधि का मौर पहना दिया।

''चलिए न !''—पत्नी मचल उठी।

''अरे वाह ! कुर्बान जाऊँ।'' गालपर अँगुली रख कमर लचकाते हुए उस मसखरे ने कहा—''आवाज ऐसी है जैसे कोयल कूकती है और नजाकत भी ऐसी है जो किसी के गले पर चाकू चला दे !....''

''गुंडा कहीं के !'' बनावटी क्रोध का प्रदर्शन कर मैं पत्नी को खींचे आगे बढ़ा।

''पत्नी मेरे शरीर में सटकर सहमी-सहमी-सी चल रही थी जिसके कारण मुझे गुस्सा आ रहा था।''

आखिर मन का क्रोध फूटकर ही रहा। मैंने डाँटते हुए कहा—"अरे साले, तुझे कब अक्ल आयेगी? मर्द होकर औरत की चाल चल रहे हो। इस बार जो तनकर नहीं चले तो वह चाँटा लगाऊँगा कि होश ठिकाने लग जायेंगे।"

"डाँट सुनकर वह तो सिसकने लगी।"

"मैंने सर पकड़ लिया।...."

"उसी समय मेरा दोस्त एक पतुकी में रसगुल्ले लिये आया।" उसने पत्नी को पुचकारते हुए कहा—"मेरे मिट्टी के शेर, नाक डुबाकर रसगुल्ले चख ले!...."

"पत्नी सिसकती ही रही।...."

मैंने रसगुल्ले की पतुकी 'यार' से लेकर कहा—"यार, यह साला बड़ा ही मासूम है। इसे इसकी बहिन के पास पहुँचाये आता हूँ।...."

"ठीक कहते हो यार!" उसने सिर हिलाते-हिलाते कहा—"इसे तो चूड़ियाँ पहन कर, घर में बैठना चाहिये।"

"बेशक! मैं इस साले की बहिन के कानों तक तुम्हारी राय पहुँचा दूँगा।" कहकर पत्नी को खींचते हुए मैं घर को लौटा।

"दोस्त ने अचानक आगे बढ़कर, मुझे अलग हटाते हुए पत्नी को गले लगाना चाहा—यह कहते हुए, 'यार' इस मासूम साले को एक बार गले तो लगा लेने दो!"

"दूसरे क्षण पत्नी 'यार' की भुजाओं में होती मगर मैंने बड़ी फुर्ती दिखलाई, झुककर दोनों के बीच ऐन मौके पर खड़ा हो गया।"

"और जैसे-तैसे उस मसखरे दोस्त से पीछा छुड़ाकर, मैंने घर की ओर का रुख किया।

"रास्ते में घबड़ाया हुआ 'महँगू' मिला।" उसने फुसफुसाते हुए कहा—"सरकार, बड़ा जुल्म हो गया।"

"वह क्या?"—मैं पूछ बैठा।

उसने फुसफुसाते हुए कहा—"घर में बहू का पता नहीं है। बड़े सरकार का हुक्म है, वह जहाँ मिले उसका धड़ सर से अलग कर दो!"

"ऐसा हुक्म किसलिए बड़े सरकार ने दिया?"—मेरी जीभ तालू में सटने लगी थी।

"सरकार, ऐसा अनर्थ क्या कभी आपके खानदान में हुआ था। बड़े सरकार का माथा शर्म से उठता नहीं।...."

पत्नी के होश तो उड़ ही गये थे मेरे चेहरे पर भी हवाइयाँ उड़ रही थीं।

मैं क्षण भर खामोश रहा।

महँगू ने सावधान करने के अभिप्राय से कहा—"सरकार, बड़े सरकार के सामने आप हरगिज न जायँ। सम्भव है, कुछ का कुछ कर बैठें।...वे सारा दोष आपके सर ही थोप रहे हैं।...."

"मुझे विश्वास हो गया और कुछ नहीं होगा तो सर के दस-बीस बाल अवश्य ही शहीद होंगे।...."

"उसके बाद लुकते-छिपते हम दोनों पति-पत्नी घर के पीछे पहुँचे। घर के पीछे आम का बगीचा था जहाँ अँधेरा था।"

"घर के पीछे थोड़ी-सी खुली जमीन थी जो चहारदीवारी से घिरी थी। वह जमीन घर के औरतों के काम आती थी।"

"मैंने घुटने के बल बैठकर 'पत्नी' को कन्धे पर बैठाया और फिर खड़ा हो उसे दीवार से ऊपर चढ़ा दिया।"

"फिर किसी-किसी तरह मैं भी दीवार पर पहुँचा।"

"जल्दी कीजिए, कोई इधर ही आ रहा है।"—देवीजी, फुसफुसा उठीं।

"और मैं उस पार कूद पड़ा।"

"उसी समय शोर हुआ चोर! चोर!"

"चिल्लानेवाली और कोई नहीं, मेरी खास बहन थी। उफ! बहन

होकर 'भाई' के साथ यह दगाबाजी ? जी में आया, जकड़कर उसका गला घोंट डालूँ । मगर वह गुस्सा उतारने का अवसर न था और सम्भव है, ऐसे में उसकी आँखें धोखा खा गई हों ।...."

"मैंने मन ही मन प्रतिज्ञा की—देवीजी को नीचे उतारकर हनुमान की तरह दीवार का समुद्र फाँद जाऊँगा और घर का कुहराम शान्त होने पर ही मुँह दिखाने की कृपा करूँगा ।...."

"मगर प्रतिज्ञा पूरी न हुई ।"

"देवी को अभी कन्धे पर ही बैठाया था कि लालटेन लिए घर की औरतें ही नहीं मर्द भी पहुँच गये ।...."

"हम दोनों को उस स्थिति में देख परिवारवाले लहू का घूँट पी रहे थे या हँस रहे थे—मुझे यह जाँचने का अवसर कहाँ था !

"मैं तो होश गँवाकर पत्थर की मूरत की तरह खड़ा था । मेरे पाँव जैसे जमीन में चिपक गये थे और देवीजी मेरे कन्धे पर बैठी हुई शर्म से गड़ी जा रही थीं ।...."

बोतलानन्द और उनकी पत्नी की प्रेम-कहानी की झाँकी हम पा चुके थे मगर 'शाबाशी' देने में हम असमर्थ थे । क्योंकि, मुँह से तो हँसी की फुलझड़ी निकल रही थी ।....

६

सिगरेट का धुआँ मुँह से फुर्र....फुर्र....कर, उड़ाने के बाद बोतला-नन्द के मुँह का फाटक इस प्रकार खुला—"गुरुदेव, घोंघाबसन्त और अन्य दोस्तो ! सभी जगह मुँह चलाना ठीक नहीं। कभी-कभी ऐसी नासमझी से मुँह की भी खानी पड़ती है।...."

"वाह, लाख रुपये की बात है और धोती में गाँठ बाँधने लायक !" मैंने सिर धुनते हुए कहा।

दीपचन्द्र नाथ विशेष ढङ्ग से मुँह बनाकर, आवेश में उबल पड़े—"आप 'बोतलानन्द' को समझते क्या हैं ? उनके बाल धूप में सुफेद नहीं हुए...."

"बस गुरुदेव, मुझे बूढ़ा बतलानेवालों से भयानक चिढ़ है।"—बोतलानन्द का झुँझलाहट भरा स्वर था।

दीपचन्द्र नाथ सन्नाटे में आ गये।

मैं दाँव खेलने के लिए तैयार हो गया। तपाक् से बोला—"बोतला-नन्द को बूढ़ा जो कहे वह स्वयं 'बूढ़ा'। बाल सुफेद तो बारह बरस के लड़कों के भी हो जाते हैं।...."

"और उम्र जो पचास को लाँघ गई ?...."

दीपचन्द्र नाथ ने इस प्रकार मुझे घूरकर देखा जैसे वे तर्क नहीं उपस्थित कर रहे हों बल्कि मुझे परास्त करने के लिए 'पाशुपतास्त्र' का प्रयोग कर रहे हों।

और चुटकी बजाते-बजाते मैंने उनका 'अमोघ-अस्त्र' व्यर्थ किया।

मैंने ऐसे लहजे में और मुस्कुराकर उनके अक्ष काटे कि बोतलानन्द की आँखें खिल गईं ।

"बन्धुवर, मनुष्य की आयु सौ वर्ष की होती है । पचास में तो आदमी जवानी के आँगन में पाँव रखता है । 'साठा तो पाठा' यह कहावत कभी कानों में नहीं पड़ी थी क्या ?...."

"और क्या ?...." बोतलानन्द कहकर जल्दी-जल्दी सिगरेट धुक-धुकाने लगे ।

दीपचन्द्र नाथ ने मुस्कुराते हुए, हाथ जोड़कर, अपनी हार का डंका बजाया ।

"इस समय मुझे एक घटना की याद हो आई ।"—बोतलानन्द ने सिगरेट का टुकड़ा फेंक उमङ्ग में कहा ।

"तो उसे उगल ही दीजिए ! उसे पेट में दबाकर रखना हानिकारक सिद्ध होगा ।...."

मिस्टर 'सिंह' थोड़ी देर के लिए बाहर चले गये थे । उन्होंने कमरे में प्रवेश करते-करते कहा और बोतलानन्द की बगल में पड़ी खाली कुर्सी पर जम गये ।

"उस समय मैं ×× में नियुक्त था । जी में आया 'छठ' का अर्घ देनेवाली स्त्रियों का तमाशा देखने 'घाट' पर चलूँ ! और दो सिपाहियों को लेकर निकल पड़ा ।...."

बोतलानन्द किसी घटना का वर्णन कर रहे थे । रूमाल से मुँह का पसीना पोंछते हुए उन्होंने कहा—

घाट पर पहुँचने पर देखा वहाँ रङ्ग-बिरङ्गी साड़ियों में तितली-सी दीख पड़नेवाली स्त्रियों का झुण्ड ही नहीं बल्कि उनकी 'भक्ति' या और कुछ की सराहना करनेवाले जवानों की टोलियाँ भी हैं ।

"कुछ मनचलों के हाव-भाव देख मेरे मन का घोड़ा भड़का । जी

में आया, हाथ में जूता पकड़ूं और उनकी सारी शेखी निकाल दूं मगर मैंने किसी तरह मुंह फेरकर अपने क्रोध को दबाया।

"क्षण भर बाद ही राजा साहब पर निगाह पड़ी। वे भी अपने मनचले मुसाहबों के साथ वहाँ हाजिर थे। और केवल हाजिर ही नहीं 'ट्रिक फेक' का तमाशा भी दिखला रहे थे।"

"उनपर जब निगाह पड़ी तो उन्हें बायीं आँख दबाकर विशेष सङ्केत करते देखा। मैं मुड़ पड़ा—देखूँ तो किस पर 'राजा साहब' की मेहरबानी लुटायी जा रही है! और एक आग की तरह सुन्दरी युवती को सूखे बैंगन की तरह मुँह बनाते देखा तो फूलकर कुप्पा हो गया।

"मन ही मन मैंने उस सुन्दरी की स्तुति की। सोचा, अभी भी ऐसी देवियाँ भारत की धरती पर हैं जिनपर पश्चिमी रङ्ग में रँगनेवाले सिनेमा-संसार के चौतरफा हमले ने भी अपना रङ्ग नहीं जमाया।"

"अचानक नशे में चूर कवि हृदय राजा साहब की देववाणी (!) सुनाई पड़ी—"हुश! मुँह बिचकाती है!...."

एक मुसाहब ने कहा—"नादान है।"

दूसरे ने कहा—"मगर गुलाब की कली है।"

राजा साहब को कविता करने की सूझी। लम्बी साँस लेकर बोले—"गुलाब की कली नहीं यह तो चम्पा है चम्पा!"

और उसी सुन्दरी की ओर मुग्ध दृष्टि डाल मजनू और 'फरहाद' की तरह मुँह बनाते हुए उन्होंने कहा—

"चम्पा, तुझ में तीन गुण, रूप, रङ्ग और बास।
पर अवगुण ही एक है, भँवर न फटकत पास॥"

"कमाल है।"

"बलिहारी।"

"कुर्बान जाऊँ।"

"तीनों बदमस्त मुसाहबों ने बारी-बारी झुक-झुककर छोटी सलामी दी।..."

"वहाँ उनके अतिरिक्त अन्य भी आदमी के बेरे उपस्थित हैं—इनकी उन नशेबाजों को परवाह न थी।"

"कुछ सुननेवाले उनकी निर्लज्जता अथवा नादानी पर मुँह में रूमाल ठूँसकर हँसे जा रहे थे मगर मैं तो हँसी का फव्वारा छोड़ता हुआ जमीन पर गिरते-गिरते सँभल रहा था।...."

"मेरे एक सिपाही ने मेरा हाथ पकड़कर दबाया। उसका संकेत था कि मैं हँसी का वेग सँभालूँ। मगर हँसी थी जो रुकने का नाम न लेती थी।"

"करैलासिंह!" हँसते-हँसते मैंने अपने सिपाही को सम्बोधन कर कहा—"राजा साहब के लिए यह 'छठ का त्योहार' नहीं बल्कि अकबर के जमाने का 'नौरोजा मेला' है।...."

"करैलासिंह अचानक सिर दाहिनी ओर झिटककर मेरी ओर करुण-दृष्टि से देखने लगा।"

"मुझे अपनी भूल मालूम पड़ी। मन्द स्वर में मुझे अपनी राय प्रकट करना चाहिए था मगर उस समय भावावेग में स्वाभाविक आवाज से भी स्वर ऊपर उठ गया था।...."

"अचानक 'राजा साहब' पर दृष्टि पड़ी—वे मुझे आग्नेय नेत्रों से देखते और क्रोध में पाँव पटकते वहाँ से मुसाहबों के साथ खिसक गये।

"हुजूर, आपने अच्छा नहीं किया।" करैलासिंह ने भर्त्सना की।

"क्या कहा?" मैंने आँखें तरेरकर उसकी ओर देखा।

वह सिपपिटाते हुए बोला—"सरकार, राजा साहबवा बड़ा ही कड़िंयल मिजाज का है। राह चलते लोगों का सर उतरवा लेता है।"

"अभी किसी 'मरद' से उसे भेंट नहीं हुई होगी। ऐसे-ऐसे कितने राजों को मैं देख चुका हूँ।"

मैं तनकर खड़ा हो गया।

"उसे बड़े-बड़े अफसरों से अच्छी जान-पहचान हो गई है सरकार ! रोज ही कोई न कोई अफसर मौज मनाने उसके महल में पहुँच जाता है हुजूर !...."

और करैलासिंह की फुसफुसाहट से मेरे शरीर में क्रोध का ज्वार उमड़ आया।

"भला चाहते हो तो मुँह में लगाम लगा लो !"—

मैं डपट उठा था।

उसके होश उड़ गये।

"तत्पश्चात् वहाँ से लौटने के लिए कदम बढ़ाते हुए मैंने कहा—"डर लगता है तो मुझे अपने गुस्सैल चाचा से। वे ऐसे अक्खड़ हैं कि क्रोध उनके आस-पास जो वस्तु भी हाथ लग जाय उसी से अपनी ताकत की परीक्षा करने लगते हैं। दूसरे को तो मैं गीदड़ के बराबर मानता हूँ जिसे एक दहाड़ में मैदान से भगा दूँ।...."

"रास्ते में पान की दुकान पर खड़ा हो मैं पनेरी से कुछ बीड़े की माँग कर बैठा।"

"और (पान के) बीड़े मुँह में रख ही रहा था कि (घोड़ों की) टापें सुन पड़ीं।

"पीछे मुड़कर देखा तो राजा के घुड़सवार।"

"एक घुड़सवार ने उतरकर मेरी कलाई पकड़ी।"

मैंने उसे झिटककर रूखे स्वर में कहा—"कौन हो तुम ?"

वह मेरी आवाज सुन प्रभावित हुआ। बोला—

"हम राजा साहब के आदमी हैं। राजा साहब ने आपको दरबार में हाजिर करने का हुक्म दिया है।...."

"साफ-साफ सारी बातें समझ में आ गईं। मुकाबला बड़ा ही जबरदस्त था। पिस्तौल डेरे में ही छोड़ आया था। शरीर पर वर्दी भी नहीं थी। मैंने मन ही मन निश्चय किया 'बल से बुद्धि बड़ी है' बाकी

कहावत को चरितार्थ करने का शुभ अवसर आज सौभाग्य से मिल गया है।"

"अचानक जेब में पड़े चाकू की याद आ गई। जिससे नहरनी और हँसुआ का काम लेने के लिए, मैंने विशेष तौर से लोहार को बड़ा बनाने का कभी हुक्म दिया था।"

आँखें खिल गईं।

"घुड़सवारों के घेरे में अकेले कैदी की तरह मैं था मगर मेरे पाँव उत्साह से आगे बढ़ रहे थे।"

"एक बड़े फाटक से होते हुए, मुझे दरबार में घुड़सवारों ने हाजिर कराया।"

"दरबार का दृश्य विचित्र था। एक गङ्गा-यमुना के सिंहासन पर राजा बैठा दाँत से होंठ चबा रहा था और अगल-बगल चाँदी की कुरसियों पर उसके मुसाहब भेड़िये की तरह भूखे घूर रहे थे।"

"अपने आस-पास देखा तो दर्जनों की संख्या में सिपाही हाथ में चाबुक लिए हुक्म की प्रतीक्षा में खड़े थे।"

"बात साफ थी, क्षण भर बाद ही राजा हुक्म देगा, 'इस बदमाश की हजामत बना दो' और बेरहम सिपाही मेरी चमड़ी उधेड़कर रख देंगे।"

"उफ! करैलासिंह जी भी अपने बचाव का प्रबन्ध करने के लिए नहीं कह आया।...."

"कोई परवाह नहीं। भय किस बात का! एक दिन मृत्यु तो अपनी गोद में ले ही लेगी फिर कायर की तरह मर-मरकर जिन्दा रहूँ। आज जो राजा ने चाबुक लगाने का हुक्म दिया तो तड़पकर चाकू उसकी छाती में घुसेड़ दूँगा।"

"राजा मेरे चेहरे के उतार-चढ़ाव को गुस्से से देख रहा था।"

"मैंने झुककर सलाम किया लहू का घूँट पीकर।"

उसने कड़ककर पूछा—"कौन हो तुम ?"

मैंने आवाज को मुलायम बनाकर कहा—"मैं यहाँ × × × का बृटिश-सरकार की ओर इन्चार्ज हूँ सरकार।"

"अफसर होने का मतलब है कि तुम किसी की पगड़ी उछालते फिरो !" राजा पूछ बैठा।

"जी नहीं मेरे सरकार, मैं तो भलेमानसों की पगड़ी बचाने का पूरा ख्याल रखता हूँ। कहीं चूक तो नहीं गया, सरकार ?" कहकर मैंने जिज्ञासा भरी नजरें उसके मुँह पर डाल दीं।

"अपना ढेंढर न देखे और दूसरे की फूली निहारे।" अचानक वह बम की तरह फूट पड़ा था—

"तुम किसलिए घाट पर गये थे।"

नशे में उसकी वाणी लड़खड़ा रही थी।

"मैं समझा, अब चाबुक पीठ पर गिरने ही वाली है। अतः मन ही मन बुद्धि से प्रार्थना की—जाग पगली, अभी भी जो खर्राटे लेगी तो फिर मेरे काम कब आयगी ?"

और बुद्धि हड़बड़ाकर उठी। उसने चुपके से कहा—"राजा को खुश करना चाहते हो तो 'खुशामदी टट्टू' बन जाओ !...." और मन मसोसकर मुझे उसकी राय माननी ही पड़ी।

"बोलते क्यों नहीं ? मुँह में ताला क्यों लग गया ?" राजा मुझसे उत्तर सुनने के लिए उतावला हो उठा था।

"सरकार, गुस्ताखी माफ हो, मैं एक 'बात' की परीक्षा लेने गया था।...." मैं बोल उठा था।

"कैसी परीक्षा ?"

सरकार, मेरे मातहत के एक सिपाही ने मुझसे कहा—" × × के राजा साहब का एक बार जो दर्शन कर ले उसके जन्म भर के कष्ट दूर

हो जाते हैं। उस दिन मैं आपके दर्शन के लिए ड्योढ़ी पर पहुँचा तो पता लगा, सरकार की सवारी घाट की ओर गई है।...."

"कौन जाति के हो?" उसकी आवाज पञ्चम से उतरी।

"अगर आप 'छोटा मुँह बड़ी बात' कहकर खफा न हों तो मैं यह कहूँगा—हम दोनों की जाति एक ही है।"

और वह चिल्ला उठा—"सिपाहियो, मुँह क्या देख रहे हो? इन्हें फौरन से लेकर 'मेहमान-घर' में पहुँचाओ, आज से यह मेरे मित्र हुए।...."

"मैंने समझा, 'मेहमान-घर' उसका कोई गुप्त-संकेत तो नहीं है मगर कुछ देर के बाद ही मेरी आँखें खुल गईं जब दोनों ने एक साथ बैठकर भोजन किया।"

चलने के समय उसने 'बिदाई' के नाम पर एक जोड़ी पीली धोती के साथ 'एक सौ एक' रुपये नकद दिए और कहा—"जब भी आप आना चाहें आपके लिए मेरी ड्योढ़ी का द्वार खुला मिलेगा।..."

"मगर, पुनः मैं उसका मुँह देखने क्यों जाता? मेरे पेट में तो दाँत जम गये थे। मैं तो अपमान के बदले का अवसर खोज रहा था।

"मन की मन ही में रह गई। मेरी बदली बहुत जल्द हो गई।"

"लेकिन नये स्थानपर भी 'राजा' के उस अपमान का डंडा भूल न सका। यों कहिये 'राजा' शब्द से ही मुझे नफरत हो गई थी। सोते-जागते राजाओं की बुराइयों को याद किया करता।...."

"फिर किसी राजापर 'मन का बुखार' उतारा या नहीं?"—मिस्टर सिंह पूछ बैठे थे।

"अहा! अपमान का बदला सूद सहित वसूल कर लिया। × × के राजा को पता लग गया कि 'बोतलानन्द' की भी धरतीपर कोई हस्ती है।"

कहते-कहते बोतलानन्द, दीपचन्द्र नाथ की ओर घूम पड़े। बोले, "गुरुदेव, छट्ठी का दूध उसे याद करा दिया था।"

"किसे ?"—दीपचन्द्र नाथ चौंक उठे थे। बात यह थी, भोलाशङ्कर उनकी गोद में टपककर नाक बजा रहे थे जिसके कारण उनका ध्यान क्षणभर के लिए 'भोलाशङ्कर' की ओर चला गया था।

"राजा को, और किसे ?"—बोतलानन्द बोल उठे थे।

"आपकी तो बदली हो गई थी और आप दूसरी जगह का पानी पी रहे थे फिर वहाँ 'राजा' कैसे टपक पड़ा ?...."

दीपचन्द्र नाथ ने तर्क का ढेला मारा और बोतलानन्द की खोपड़ी भिन्ना उठी। क्षुब्ध स्वर उनके मुँह से निकल पड़ा—

"आह, गुरुदेव ! आप तो मेरा 'मूड' खराब कर रहे हैं। भोलाशङ्कर को दो पैसे देकर विदा कीजिए !"

और दीपचन्द्र नाथ अभी कुछ निर्णय भी नहीं कर पाये थे कि मिस्टर सिंह ने झट से दो पैसे निकाल 'भोलाशङ्कर' के हाथों में रख दिये।

"बबुआ, जरा सत्तू खरीदकर चख तो आ !"—

मिस्टर सिंह की प्रेम भरी आवाज थी। वे जानते थे, भोलाशङ्कर को अगर कोई चीज खुश कर सकती है तो उसका नाम 'सत्तू' ही है।

और भोलाशङ्कर खुश हो उछलते-कूदते नौ-दो-ग्यारह हो गये।

"अब दीपचन्द्र नाथ को आपकी बातें समझ में आ जायँगी। खोलिए, मुँह का फाटक !" मिस्टर सिंह ने आग्रह किया।

बोतलानन्द ने मुस्कुराकर कहा—"गुरुदेव, × × × × के राजा की बात कह रहा हूँ, × × के अपमान की लाठी मारनेवाले से मेरा मतलब नहीं।"

"अच्छा....!"

"हाँ, तो सुनिये मिस्टर सिंह !...." बोतलानन्द का मुँह 'सिंह' की ओर घूम पड़ा—

"एक दिन सन्ध्या समय हवाखोरी के लिए निकला था। देखा, दो

घोड़ों की बग्घी पर × × के राजा की सूरत से मिलते-जुलते एक महा-पुरुष सवार हैं और घोड़े हवा की तरह उड़े जा रहे हैं।

राजा के अपमान की याद ने मुझे चाबुक मारकर जगाया। मैंने अपने साथ के सिपाही से पूछा—"गुरदेल खाँ! कौन है यह ?"

गुरदेलखाँ ने सहमते हुए कहा—"सरकार, यहाँ के राजा साहब को आप नहीं जानते ?...."

"जानता होता तो पूछता क्यों ? मुझे तो तुम्हारी जुबान से आज ही पता लगा कि यहाँ कोई राजा भी है।...."

"हुजूर, इन्हें राजा न कहिए, यह तो नबाबों के कान काटते हैं।"—गुरदेलखाँ उत्साह से भर गया था।

"वह कैसे खाँ ?"—मेरे मुँह से निकल पड़ा।

"डर लगता है कि कहीं गुस्ताखी न हो जाय !...."

"ऊँह, तुम बेधड़क उसके विषय में उगल दो !...."

"बहुत अच्छा सरकार !" कहकर गुरदेलखाँ क्षणभर चुप रहा। फिर लम्बी साँस लेकर बोला—

"हुजूर के कानों तक वाजिदअली साहब का नाम तो पहुँचा होगा ?"

"राम कहो खाँ! बटेर लड़ाते-लड़ाते गद्दी गँवानेवाले लखनवी नवाबों को भला कौन नहीं जानता होगा ! मेरा ख्याल है, जब तक शब्दकोष में नाज़, नज़ाकत और उससे मिलते-जुलते शब्द रहेंगे तबतक नवाबों की नवाबी को कोई भुला नहीं सकता।...."

"बहुत ठीक कह रहे हैं मेरे हुजूर !" गुरदेलखाँ खुशी में डूब गया। बोला—"तब तो नवाबों की बेगमों और रखेलियों के विषय में भी सरकार ने कुछ सुना ही होगा !"

"वाह सुना नहीं क्यों ? वाजिदअली शाह 'भुलभुलैया' में नङ्गी बेगमों के साथ कैसे-कैसे गुल खिलाते थे, वह भी क्या जुबान पर लाने की बात है !...."

"तो यहाँ के राजा साहब भी बेगमों के मामले में 'वाजिदअलीशाह' से कम अधिकार नहीं रखते ! बल्कि कई कारणों से तो मैं इन्हें नवाब साहब से बढ़ा-चढ़ा मानता हूँ ।"

"बस, चुप रहो ! मुझे उसकी प्रशंसा से कोई मतलब नहीं । अगर सुनाना चाहते हो तो ऐसी बात सुनाओ जिससे राजा साहब की सारी शेखी मैं भुला दूँ !...." मैंने उसे डाँट दिया ।

सोचते-सोचते अचानक ही गुरदेलखाँ के मुँह से निकल पड़ा—"सरकार, उनके रङ्गमहल में तो ऐसी चीज मिल सकती है जिसे रखना कानून की दृष्टि से अपराध समझा जाता है ।"

"तो जल्द बतलाओ खाँ, वह कौन-सी चीज है ?" मैं उछल पड़ा था । मुझे ×× देव के राजा के अपमान का बदला ×××× के राजा से लेने का अवसर दीख पड़ा था ।

गुरदेलखाँ ने कान के पास मुँह ले आकर कहा—"×××। उसे राजा साहब स्वयं तैयार भी कराते हैं ।..."

मैं अचानक क्रोध से उबल पड़ा । बोला—"तो गुरदेलखाँ, अब तक तुम्हारे मुँह में ताला क्यों बन्द था ?..."

"हुजूर, मेरी खता माफ हो ! अब से गलती हो तो जुबान कटवाकर ही दम लीजिएगा !...."

"गुरदेलखाँ मेरा लोहा मान, गिड़गिड़ा उठा था ।"

"जाओ माफ किया ।" मैंने चेतावनी के स्वर में कहा—"अगर तीन-चार दिनों तक मुँह में दही जमाये रखना होगा !"

उसने घुटने टेक दिए । दाँत निपोरते-निपोरते बोला—"सरकार, जब तक सरकार हुक्म न देंगे बन्दा ओठ नहीं खोलेगा ।"

"और चौथे दिन मेरे निर्देशानुसार, एक दर्जन सैनिकों से भरी 'लारी' राजमहल के द्वार के सामने रुकी ।

"××के राजा की सूरत आँखों के सामने आ खड़ी हुई ।"

मैंने आवेश में सैनिकों से कहा—"मेरे साथ आओ !...." और मैं भीतर की ओर बढ़ा।

राजा के द्वारपालों में से एक ने हमें रोकते हुए कहा—"राजा साहब का हुक्म है, उनकी इजाजत के बगैर महल के भीतर कोई जाने न पाये।...."

"हुश !" कहकर मैंने एक घूँसा लगाया और डपटकर बोला—"अब जो जुबान हिलाया तो पिस्तौल से खोपड़ी चूर कर दूँगा !...."

साथ में एक मैजिस्ट्रेट थे। उन्होंने मन्द स्वर में कहा—"बोतला-नन्द, जरा आहिस्ते से....।"

मैंने लहू का घूँट पीकर कहा—"साहब, आप चाहते हैं कि बिना गोली चले ही झगड़ा शान्त हो जाय तो मेरे कामों में हुँकारी भरते चलें। नहीं तो मुझे हुक्म दे दें कि ड्योढ़ी के बाहर खड़ा मैं टुकुर-टुकुर आप लोगों के सही-सलामत लौटने की राह देखूँ !...."

"और साहब के मुँह से कुछ निकले उसके पहले ही राजा के आठ-दस सिपाही बन्दूक लिये हमारी राह रोक खड़े हो गये।...."

"मेरे शरीर में आग ही तो लग गई।" मैं अङ्गारों पर लोटता हुआ गरज पड़ा—"जान की खैर चाहते हो तो आँखों के सामने से दूर हो जाओ !...."

राजा के एक सिपाही ने मूछों पर ताव देते हुए कहा—"जनानखाने में आप लोग नहीं घुस सकते।"—

यह अपने को बड़ा ही वीर समझ रहा था।

"मैंने उछलकर एक लात उसकी तोंद पर जमा दी।"

"वह भारी खामे चित्त गिरा।"

"मैंने कसकर उसकी कोख में दो एड़ लगाई।"

"वह पिल्ले की तरह 'किक्या' उठा।"

और अन्य सिपाहियों का रुख खराब देख, मैंने पिस्तौल हाथ में

लेकर कहा—"अपने-अपने हाथों के हथियार डाल दो, नहीं तो जहन्नुम जाने के लिए तैयार हो जाओ !...."

"सिपाहियों ने बुद्धिमानी से काम लिया ।"

"उनके हथियार हमारे सैनिकों के अधिकार में आ गये ।"

मैंने कड़ककर पूछा—"बताओ राजा कहां है ?"

एक सिपाही ने कहा—"ऐश बाग में ।"

"ऐश बाग में !" मैंने मुँह बिचकाकर कहा—

आज सारी ऐयाशी भुला दूँगा । चलो, कहाँ है 'ऐश बाग' ?

"हुजूर !...." कहते-कहते वह रुक गया ।

"हुजूर कहकर ठगनेवाले !...."

मैंने बढ़कर एक मुक्का उसे मारा । बोला—"ऐश बाग में ले चलता है अथवा हड्डी-पसली एक जगह कर दूँ !...."

"मुक्का खाकर तो सिपाहीराम ने जुबान हिलाने की जैसे कसमें ही खा लीं । भीगी बिल्ली की तरह वह एक ओर बढ़ा ।"

"और अचानक राजा के 'ऐश बाग' में घुसकर जो दृश्य हमने देखे...उफ !....उसका वर्णन न करना ही भला ।..."

"वाह, यह कैसे होगा ?...." दीपचन्द्र नाथ मचल पड़े ।

'गुरुदेव, आप नहीं मानते तो सुनिये !...वहाँ नङ्गी युवतियों की संख्या दो दर्जन से अधिक थी ।...."

और मि० सिंह चिल्ला पड़े—"बस, बस, उस चर्चा को साफ अलग करके ही आगे मुँह खोलिए ! ..."

"क्यों, आपको क्या नुकसान हो रहा है ?..."

दीपचन्द्र नाथ पूछ बैठे मि० सिंह से ।

"शराब पीने, कामोत्तेजक चित्रों के देखने से जो नुकसान होता है उससे मैं बचना चाहता हूँ मि० दीपचन्द्र नाथ ।...."

"आखिर क्यों ?"—

"और 'बोतलानन्द' इसी अवसर पर उबल पड़े।" बोले—"धत्त गुरुदेव, आप भी बाल की खाल निकालने लगे। चुप भी रहियेगा?"

"नहीं, आपको नंगी युवतियों का वर्णन करना ही होगा!...."

और दीपचन्द्र नाथ के हठ के आगे सर झुकाकर बोतलानन्द ने कहा—

"अच्छा, तो सुन लीजिये! वाजिदअली शाह के विषय में जैसी कहावतें प्रचलित हैं उनसे 'राजा साहब' दो कदम आगे बढ़े हुए नजर आये। अब तो आप समझ गये होंगे! होशियार के लिए इशारा ही काफी होता है।...."

और दीपचन्द्र नाथ ने मि० सिंह के मुँह के भावों को पढ़कर, मुस्कुरा दिया। बोले—

"बहुत जल्द रूठ जाते हो यार!"

अब तक मैं चुप बैठा था मगर अब चुप्पी को क्षणभर के लिये अलग हटाने में ही कल्याण मालूम पड़ा। मैंने प्रार्थना भरे स्वर में कहा—"हे महापुरुषों! मैं आपकी स्तुति करता हूँ। क्या आप लोग मुझे यह वरदान देने की कृपा करेंगे कि मैं श्रीयुक्त बोतलानन्द के मुखारविन्द से उनकी आत्म-कहानी का आनन्द लूट सकूँ?...."

"अवश्य!...."

"जरूर!...."

"तो कहानी की घोड़ी आगे बढ़ रही है, सावधान!" कहकर बोतलानन्द बोले—

"नंगी युवतियाँ हमें देखते ही सिमटती-सिकुड़ती पेड़ और पौधों की ओट में छिप गईं।"

राजा क्रोध में दाँत किटकिटाता पाँव पटककर बोला—"मेरे सिपाही क्या मर गये?...."

"नशे की तीव्रता के कारण इससे अधिक राजा बोल न सका।"

"नहीं धर्मावतार, सभी के तन में अभी प्राण बाकी हैं मगर इस

समय वे मिट्टी के शेर का सफल अभिनय कर रहे हैं।"—मैं खून का घूँट पीता हुआ बोल उठा था।

"तू डाकू है? हमारा धन लूटने आया है?...." राजा ने लड़खड़ाते हुए कहा।

"जी, हम डाकू नहीं, डाकू के दुश्मन हैं। वर्दी देखकर भी नहीं पहचानते? जरा आँखें खोलकर देखिए!...."

ओह, राजा ने लापरवाही से अपना हाथ एक ओर झिटकते हुए कहा—"आजकल के डाकू पुलिस की वर्दी में ही डाका डालते हैं और परिचय पूछने पर शान से कहते हैं—हम पुलिस हैं।..."

मैंने गम्भीर रूप धारणकर, रूखे स्वर में कहा—"बातों की जाल में फँसाकर समय बरबाद न करें! हम आपके महल की तलाशी लेंगे!..."

"चुप रहो! मैं 'राजा बहादुर' हूँ, चोट्टा नहीं।...."

"कानून की निगाह में सभी बराबर हैं।" मेरा उत्तर था।

"ऐ, बक-बक मत करो! रुपये चाहिये तो हजार-दो हजार माँग लो!...."

राजा बहादुर नशे में झूम रहे थे।

"रुपये नहीं चाहिये, हम तो आपके हाथों में हथकड़ी पहनाने आये हैं।"

और मेरे उपर्युक्त शब्दों ने उसके कान खड़े कर दिये।

"छोटे मुँह बड़ी बात मत बोलो!"—

कहकर, उन्होंने स्वर को पञ्चम में पहुँचाते हुए कहा—"कोई मेरे हाथों में बन्दूक तो पकड़ा दे, मैं सबको भून डालूँ।"

"यह तो सरासर मेरी बहादुरी का अपमान था।"

"मैंने आगे बढ़कर, उन्हें केवल एक तमाचा लगाया और उठाकर जमीनपर दे मारा।"

"उसी समय मैजिस्ट्रेट ने मेरा हाथ पकड़ लिया।"

"मेरे 'साहब' को देखा तो भय से उनका चेहरा सुफेद हो गया था।"

"जाइए महाराज, आप मेरे रहते डरते हैं?....इसमें मेरा अपमान होता है। आप हुक्म दें तो अकेले ही राजा के सारे सिपाहियों का भुरता बना दूँ!...."

और मेरे शब्दों से मैजिस्ट्रेट की परेशानी कुछ अवश्य ही कम हो गई।

"राजा साहब पर निगाह पड़ी तो मैं अपनी हँसी रोक न सका। वे चित पड़े हुए थे और उनकी टकटकी बँध गई थी।..."

"उसके बाद राजा साहब को कैसी-कैसी परेशानियाँ उठानी पड़ीं—उससे मुझे कोई सरोकार नहीं। मेरी छाती की आग ठंढी पड़ गई—यह आप लोग जान लें!...."

"हाँ, एक दिन राह में राजा साहब की नजर मुझपर पड़ी तो वे बग्घी से उतर पड़े।"

"मैं पिस्तौल हाथ में पकड़कर सावधान हुआ।..."

"मगर मेरा अनुमान गलत निकला। वे बदला चुकाने के लिए धरती पर पाँव रखने का कष्ट नहीं उठाये थे बल्कि मेरी बहादुरी का इनाम देना चाहते थे।

सौ रुपये का नोट बढ़ाते हुए उन्होंने कहा—"इसे चुपके से रख लीजिये!"

मैंने कहा—"यह किसलिए?"

उन्होंने लजाते-लजाते कहा—"पेश बाग वाली घटना की चर्चा कहीं मत कीजिएगा!"

मैंने आँखें फेरते हुए कहा—"मैं उसके लिए कसमें नहीं खा सकता।"

उन्होंने लपककर मेरी जेब में नोट रख दिया और कहा—"अच्छी बात है मगर इसे रख ही लीजिए!"

"और मैं दिमाग पर जोर देकर कुछ निर्णय करूँ उसके पहले ही वे बग्घीपर सवार हो नौ-दो ग्यारह हो गये।"

"उसके बाद, बहुत जल्द वहाँ से मेरी बदली हो गई।

"अभी तक मेरे मन से सन्देह का भूत नहीं निकल सका कि उस चिकने मुँह के ठग ने ही अफसरों पर फलफूल चलाकर मेरी बदली करायी थी।.."

"अच्छा, यह तो बतलाइए श्रीयुत बोतलानन्द, आपके जीवन के पिटारे में ऐसा भी कोई अनोखा अनुभव आया जिसने 'राजा' की बराबरी की हो?—" मिस्टर सिंह पूछ बैठे थे।

"क्या मतलब है आपका? मेरी समझ में कुछ भी नहीं आया।" बोतलानन्द औचक से चौंक पड़े।

"मेरा मतलब मार खाने के बाद इनाम देनेवाले 'महापुरुष' से है।..."

"ओह, मैं समझ गया।"—

बोतलानन्द दिमाग पर जोर डाल बैठे।

"चुप क्यों हो गये?"—

इस बार दीपचन्द्र नाथ ने मुँह खोला।

"ठहरिये, याद कर रहे हैं।"—

मिस्टर सिंह ने विशेष ढङ्ग से हाथ उठाते हुए दीपचन्द्र नाथ को मुँह बन्द रखने के लिए कहा।

और बोतलानन्द अचानक कुर्सी छोड़ उठ खड़े हुए। बोले—"अब मैं नहीं रुक सकता। वह कहानी कल सुनाऊँगा।"

बोतलानन्द अगर 'नहीं' कह दें तो फिर उनके मुँह से 'हाँ' कोई निकलवा दे—ऐसी सामर्थ्य वहाँ किसी में न थी।

सभी आनेवाले कल की प्रतीक्षा करने लगे।

७

और आनेवाला कल अपने साथ आनन्द का पिटारा लिए बहुत जल्द आ धमका।

दीपचन्द्र नाथ के दरवाजे पर पहुँचते ही 'रमेशप्रसाद' पर दृष्टि पड़ी और अधरोंपर प्रसन्नता फूट पड़ी—"जनाबआली, कब आये?..."

"आज ही।...." उन्होंने हँसते हुए कहा।

बात यह थी, उनकी नेक पत्नी दो पुत्रियों के बाद तीसरी सन्तान शीघ्र ही धरतीपर धरनेवाली थीं और उनकी इस कृपा का बदला रमेश-प्रसाद ने उन्हें अपने घर पहुँचाकर चुकाया था।

पत्नी को घर पहुँचाने के सम्बन्ध में मित्र-मण्डली के मित्रों की एक राय न थी। यों कहिये; जितने मुंड उतनी ही मति थी। उदाहरण के लिए—

बोतलानन्द कहते—"रमेश बाबू के पेट में दाढ़ी है। वे अपनी श्रीमतीजी को इसलिए घर पहुँचा आये कि अगर कहीं 'बचवा' ने जन्म लिया तो मित्र-मण्डलीवाले मेरी धोती-लँगोटी तक बेंचकर गुलछर्रे उड़ा देंगे!...."

दीपचन्द्र नाथ की तर्क पूर्ण सम्मति थी—

'रमेश' को पुत्र उत्पन्न हुआ तो हम कभी भी उससे दो-चार सेर रसगुल्ले ठग लेंगे।....अकेला होने और परदेश में रहने के कारण ही उसने पत्नी को घर पहुँचा दिया।

और जिस दिन मित्र-मण्डली में उपर्युक्त विवाद ने सिर उठाया था।

उस दिन मैंने सिर झिटककर कहा था—"आप लोगों का अनुमान, हथि-यारों से दुनिया को वश में करनेवाले सपने की तरह गलत है। मेरा दृढ़ मत है, रमेश बाबू को यह भय सता रहा था कि कहीं पत्नी ने पुनः मुर्गा खेलाने के लिए मजबूर किया तो मैं धड़ाम से धरतीपर गिरकर चारों खाने चित्त न हो जाऊँ !...."

दीपचन्द्र नाथ ने किस तर्क की छुरी से मेरे विचारों का गला तराशा—उसे दुहराने से भला क्या लाभ ?

उसी समय सभी मित्र आ जुटे और अपने बीच 'रमेश' को पाकर दाँत दिखला-दिखलाकर प्रसन्नता प्रकट करने लगे।

उसके बाद खुशी के बाग में झूमते हुए मित्रों ने चाय पर चाय पी और रमेश बाबू के नामपर दर्जनों सिगरेट फूँके तथा पान चबाये।

मिस्टर सिंह बोले—"हाँ, अब 'कल' के बारे 'बोतलानन्द' को याद करना चाहिये !...."

"बेशक !"—मेरे मुँह से निकला।

"याद ही नहीं 'बोतलानन्द' को उसे पूरा भी करना चाहिए !"

"बस ! आप लोग मुझे 'नेता' समझ रहे हैं।" बोतलानन्द नाक फुला बैठे।

"आपको नेता कौन कह रहा है जी ? आप जैसा वचन का पक्का तो चिराग लेकर खोजने पर भी न मिले।" बात बिगड़ते देख मिस्टर सिंह उबल पड़े थे।

"अब 'बोतलानन्द' का दरबार यहीं लगता है क्या ?"—रमेशप्रसाद पूछ बैठे थे।

"जी हाँ !" -

मन्द स्वर में कहकर मि० सिंह ने इशारे से रमेश बाबू को मुँह बन्द रखने की सलाह दी।

"उस समय मैं 'हजारीबाग' में था।"—

बोतलानन्द 'मूड' में आ गये थे।

"जी हाँ, आप हजारीबाग थे।"—लपाक से 'सिंह' ने कहा और उत्सुकता से उनका मुँह निहारने लगे।

"मेरे बड़े अफसर शिकार खेलने का शौक लिये मेरे इलाके में आयें।...."

बोतलानन्द का मुँह खुल चुका था।....

"जङ्गल में एक 'कुकुर' बाँध दिया गया।"

"कुकुर बाँधने का अभिप्राय था जङ्गल में 'बाघ' है अथवा नहीं ?...."

"दूसरे दिन सुबह ही हमलोग उस स्थानपर पहुँचे जहाँ 'कुकुर' को किकियाते हम छोड़ गये थे।"

"बाघ कहकर मूसराम चीख उठे।

"मूसराम अफसर के बड़े प्रिय पात्र थे। जब देखिए वे अफसर के पीछे दुम की तरह लगे रहते थे। मैं तो उन्हें फूटी आँखों नहीं देखना चाहता था। खुशामदी टट्टुओं से मुझे भयानक चिढ़ है।"

"साहब (अङ्गरेज नहीं हिन्दुस्तानी अफसर) के मुखपर भी हवाई उड़ने लगी।"

मैंने बन्दूक सँभालते हुए कहा—"कहाँ है बाघ !"

"वहाँ उस झाड़ी में।"—

मूसराम ने एक झाड़ी की ओर संकेत किया।

"मैंने झाड़ी के भीतर-बाहर आँखें फाड़-फाड़कर देखा मगर बाघ तो क्या बिल्ली का एक बच्चा तक वहाँ न था।"

मैंने मूसराम को फटकारते हुए कहा—"भग !....यहाँ बाघ कहाँ से आयगा ?....बकरी का कलेजा रखकर शेर का शिकार खेलने चलते हो ?...."

"मूसराम ओहदे में मेरे बराबर थे इसलिए मेरे 'तुम' सम्बोधन को वे बुरा नहीं मानते थे।"

"फटकार सुनकर मूसराम को ताव आ गया।" सूने बैंगन की तरह मुँह बनाकर उन्होंने कहा—"यार, मुझसे कसम लिखा लो, मैंने पत्तों को हिलते देखा था।"

"वे तो हवा के झोंके से हिल गये होंगे!"—

"आँधी बह रही है न?...."

मूसराम के स्वर में व्यंग्य था।

"फिर 'बाघ' क्या हवा में उड़ गया?"—

"चुप रहिए बोतलानन्द, कुत्ते का पता नहीं है।" और दोनों के बीच अफसर टपक पड़े थे।

"हुजूर, युग-युग जियें। कुत्ते पर तो मेरा ध्यान ही नहीं था। उसे जरूर बाघ उठा ले गया।...."

मूसराम को तो मुँह माँगी मुराद मिल गई थी।

"मुझे भी यही शक है।"

अफसर सशङ्कित दीख पड़े।

"हुजूर, और वह बाघ जरूर दूसरे कुत्ते की खोज में आया था।...."

"मूसराम, बेकार की बात मत करो! मैं कहता हूँ, बाघ इधर नहीं आया होगा। काफी दिन यहाँ रहते हो गये मगर बाघ की सूरत तो अलग, उसकी आवाज भी मैंने कभी नहीं सुनी।...."

और मेरी दहाड़ सुन साहब भी जाग उठे। शेर की आँखों से मुझे घूरते हुए उन्होंने कहा—

"तो कुत्ता कहाँ गया?"

मैंने आवाज को पञ्चम से उतारते हुए कहा—

"सरकार, आपने कल देखा ही था, बाँधते समय वह कुकुर किस प्रकार चीख-चीख आसमान सरपर उठा रहा था!....अपने स्वभाव

के अनुसार रसीवर मन का बुखार उतार नौ-दो-ग्यारह हो गया होगा।...."

"नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। आप 'बाघ' के डर से ऐसा कहते हैं।"—

अफसर के शब्दों के तीर ने मेरी छाती के भीतर घाव बना दिये।

"जरूर यही बात है हुजूर! 'बोतलानन्द' बिल्ली से डरते हैं।"—मूसराम ने घावपर नमक रखने का काम किया।

"और मेरे मुँह से गाली निकलते-निकलते रह गयी।" मगर अंगारों पर लोटता हुआ मैं बोल ही गया—

"मेरा खुला चैलेंज है आप दोनों के लिए। आज आधी रात के समय हम बन्दूक हाथ लिये पैदल ही 'बाघ' की खोज में निकलें!.... फिर मालूम हो जायगा कि कौन 'शेर' है और कौन 'सियार'?..."

"बहुत अच्छा! हमें 'चैलेंज' स्वीकार है।"

साहब के बोलने के पूर्व ही मूसराम बोल उठे।

साहब ने गम्भीर रूप दिखाकर कहा—"अब हम लौट चलें! 'डाक बँगला' तक पहुँचते-पहुँचते भोजन का समय हो जायगा।...."

और साहब का हुक्म टालने का कोई कारण न था।

'डाक बँगला' में साहब भोजन कर रहे थे और मुझे अनुपस्थित देख, 'मूसराम' उनसे चुगली खा रहे थे—

"हुजूर, 'बोतलानन्द' की हड्डी लड़ने के लिए फड़फड़ाया करती है। बाघ को तड़पते हुए, मैंने अपनी आँखों से देखा था सरकार।...."

"हो सकता है।"—साहब ने आमलेट को छुरी से काटते हुए कहा।

"और किस तरह गुर्राकर वह हमें 'चैलेंज' दे रहा था! आपकी वह तनिक परवाह नहीं करता सरकार! उसकी गुस्ताखी का मजा नहीं चखाया गया तो उसका हौसला बढ़ता ही जायगा।...."

"मूसराम की प्रार्थना का असर साहब के दिलपर कैसा पड़ा ? यह मैं नहीं जान सका।"

"अचानक उस कुत्तेपर दृष्टि पड़ी जो कल बाघ के शिकार के लिए जंगल में बाँधा गया था।"

"वह सहमा-सहमा गोश्त की हड्डी की लालच में अन्य कुत्तों के साथ बँगले के सामने हाजिर हो गया था।"

मैं अब अपने को रोक न सका। किवाड़ की ओट से निकल मैं कमरे में दाखिल हो गया। बोला—

"मूसराम, तुम्हारा अनुमान सही निकला। एक लाबरसिंह यहाँ रहते हैं उनसे पता लगा, कुत्ते को बाघ के मुँह में पड़े हुए उन्होंने अपनी आँखों से देखा।...."

"यह खबर तो मुझे सुबह से ही मिल गई थी मगर मैंने उसे कौतुक के लिए पेट में छिपा रक्खी थी।...."

मूसराम दाँत दिखलाते हुए बोले।

और मुँह बिचकाते हुए मैंने कहा—"हैं....हैं....हैं....चापलूस कहीं का !...."

"खबरदार ! बोलतानन्द, मुँह में लगाम लगाओ ! तुम जानते नहीं, मेरा गुस्सा बड़ा ही खराब होता है।....देखते हैं हुजूर, इसकी गुस्ताखी ?...."

और मूसराम की बातोंपर ध्यान दिये बगैर मेरे गले से जोरदार आवाज निकली—"आ तूऽऽ"

"मेरी आवाज ने जादू का काम किया।"

"उछलते हुए वही 'कुकुर' मेरे पाँवों के पास पहुँचकर पूँछ हिलाने लगा।"

"मूसराम की बोलती बन्द हो गई।"

"तबतक अन्य कुत्ते भी कमरे के द्वारपर खड़े पूँछ हिलाते नजर आये।"

"यह तो वही कुत्ता है जिसे कल बाघ उठा ले गया था !" साहब विस्मय से पूछ बैठे।

"जी हाँ, एकदम वही है, स्वर्ग से लौट आया है।" कहकर मैंने मुस्कुरा दिया।

"साहब के कलेजे में मेरी हँसी चुभ गई।"

और घन्टे भर बाद ही उन्होंने डाक बँगला छोड़ दिया।

एक सप्ताह बाद—

अफसर महोदय अँगरेज कमिश्नर और डिप्टी कमिश्नर के साथ आ धमके।

और उन्होंने मुझे अलग बुलाकर व्यंग्य भरी मुस्कान से स्वागत करते हुए कहा—

"साहब लोग शिकार के लिए आये हैं। उनके साथ जंगल में रात काटने की इच्छा पूरी कीजिएगा !..."

मैंने गर्व से सीना फुलाते हुए कहा—"बहादुर ऐसे अवसर को अपना सौभाग्य मानते हैं। आपकी कृपा के लिए आभारी हूँ।"

उस रात—

बाघ मिलनेवाले जङ्गली हिस्से में एक 'पाड़ा' बाँधा हुआ था।

"पेड़ों पर तीन 'मचान' बँधे थे।"

"दो 'मचानों' पर दोनों अङ्गरेज अफसर राइफल लिये शेर के आने की राह देख रहे थे और तीसरे मचानपर मैं उनकी मेमों के साथ बैठा था।"

"बन्दूक मेरे पास भी थी मगर वह 'मेमों' के हिफाजत के लिए ही मिली थी। शेर अथवा भालूपर गोली चलाने का मुझे अधिकार न था। अङ्गरेज अफसरों के शिकारपर भला काली चमड़ीवाला कैसे गोली चला सकता था !"

"आधी रात बज रही थी।"

"सभी साँस रोककर शेर की प्रतीक्षा कर रहे थे।"

"अचानक आहट मिली।...."

"मैंने पाड़े की ओर दृष्टि डाली मगर अँधेरे के कारण कुछ सूझ न सका।"

"तभी शेर के भयानक दहाड़ से जङ्गल गूँज उठा।"

"मैंने मेमों की ओर देखा तो भय से दोनों मूर्छित-सी हो गई थीं।"

"मैं प्रतीक्षा करने लगा, शीघ्र ही दोनों साहबों की राइफलों की गोलियाँ शेरराम को ढेर कर देंगी।"

"मगर काफी देर हो गई और कानों में गोली छूटने की आवाज नहीं सुनाई पड़ी। मेरा माथा ठनका—कहीं मेमों की तरह साहबों के होश भी तो हवाखाने नहीं चले गये?"

"जो हो! 'शेर' दहाड़ से डराकर जिन्दा वापिस चला जाय—यह मैं सहन नहीं कर सकता।"

"बन्दूक सँभालकर मैंने टार्च की रोशनी सामने फेंकी। उफ! पाड़े को दबोचकर एक नव हाथ का शेर बैठा था जिसकी आँखें अङ्गारे की तरह दहक रही थीं।...."

"उसे सँभलकर भागने अथवा आक्रमण करने का मैंने अवसर नहीं दिया।"

"धाँय! धाँय!!..."

केवल दो बार मेरी बन्दूक गरजी और शेरराम अपनी चीख से कान के परदे फाड़ने का प्रयत्न करते हुए तड़पकर शान्त हो गये।

"शाबाश मेमसाहब, वाह मेमसाहब! आपने तो यह कमाल दिखाया कि आपके क्या कहने!...." मैं चिल्ला उठा।

और कमिश्नर साहब की मेम की आँखें खुल पड़ीं। बोली—"शेर मर गया?"

"जी हाँ, हुजूर! आपका निशाना कितना अचूक है!...."

मेरी आवाज़ पञ्जग में पहुँच गई थी। मैं चाहता था कि 'कमिश्नर' साहब के कानों तक मेरी आवाज़ पहुँच जाय !—

"हैं तुम्हारा दिमाग तो नहीं खराब हो गया ! बन्दूक तो तुम्हारे हाथों में है।"—

दोनों मेमसाहब विस्मय से भर गई थीं।

दूसरी बोली—

"गोली तो तुमने चलायी।"

मैं घबड़ाहट में उनके मुँहपर हाथ रखकर बोला—

"हुजूर, ऐसी बात मुँह से न निकालें ! मैं गरीब आदमी हूँ। एक अकेला मैं कमानेवाला और घर में नौ आदमी खानेवाले। नौकरी छुट गई तो भूखों मरना पड़ेगा।...."

"तुम मत घबड़ाओ !...."

कमिश्नर साहब की मेम मेरी पीठ सहलाती हुई बोली—"मैं साहब से कहूँगी, शेर मैंने मारा।"

"बहुत ठीक हुजूर ! आपने मुझे जिला दिया। लीजिए, बन्दूक पकड़िये !...."

मैं आनन्द विभोर हो रहा था।

बन्दूक मैंने मेम के हाथों में पकड़ा दी।

और जब सभी मचान से उतरे तो दोनों साहबों को मैंने झुक-झुककर सलामी दी।

डिप्टी कमिश्नर तो केवल अँगुली हिलाकर चुप हो गये मगर कमिश्नर साहब ने मुझपर मन का बुखार उतारने के लिए कमर कस ली।

"तुमने शेरपर गोली क्यों चलायी ? मैंने तुम्हें मना किया था।" कमिश्नर साहब मुँह सिकोड़कर बोले।

"जी हाँ हुजूर, आप बिलकुल सही कह रहे हैं। आपने तो साफ-साफ कह दिया था कि गोली चलाने का हक मैंने छीन लिया।" मैंने

कहा। सोच रहा था, किस प्रकार कमिश्नर साहब के गुस्से को ठण्ढा करूँ ?

"फिर 'हुक्म' क्यों तोड़ा ?"

"हुजूर, मेमसाहब से पूछ लें !"

"क्या पूछें ? तुम्हारा सर ?...."

"नहीं 'सर', मेमसाहब...."

कहकर, मैं मेमसाहब के मुँह की ओर देखने लगा।

मेमसाहब अब तक ओठों पर हँसी लिये खड़ी थीं मगर मेरी प्रार्थना भरी दृष्टि में मेरे मन के भावों को पढ़कर वह खिलखिला उठीं।

दोनों साहब मेमसाहब की हँसी का मतलब नहीं समझ सकने के कारण, उनका गोरा-गोरा मुखड़ा निहारने लगे।

अपनी पतली और सुरीली आवाज में उन्होंने कहा—"बन्दूक तो मेरे हाथों में है। फिर यह सीधावाला बहादुर आदमी गोली कैसे चलायेगा ?...."

'सीधावाला' 'बहादुर' शब्द का प्रयोग मेमसाहब ने मेरे लिये किया था।

"कहिए तो सरकार, बन्दूक मेमसाहब के हाथों में और गोली मैं चलाऊँ ? विश्वास करने की बात है हुजूर ?...." अपनी वकालत स्वयं करने की ठान ली थी मैंने।

"साहब ने मेरी बातों पर ध्यान दिये बगैर मेमसाहब से प्रश्न किया—

"तो शेर को तुमने सुला दिया ?"

"फिर दूसरा कौन ?...." कहकर मेमसाहब ने मुस्कुराते-मुस्कुराते डिपटी कमिश्नर की 'मेम' की ओर देखा और वह भी मुस्कुरा पड़ी।

"बहुत अच्छा ! डेरा चलो, हम जल्द कपड़ा बदलेंगे !...." कहकर कमिश्नर साहब ने डेरे की ओर का रुख किया।

"डिपटी कमिश्नर तो टाँग फैलाये चुपचाप खड़े थे।"

"वे उसी प्रकार धीरे-धीरे कदम बढ़ाते।"

"दोनों मेमों में काना-फूसी हुई।"

"फिर तो दोनों की हँसी रोके नहीं रुकती थी।"

"उधर दोनों साहब बहादुर थे जो शर्म के भार से धरती में धँसे जा रहे थे।...."

"उसके बाद 'मेमसाहब' ने साहब से भेद खोल दिया।"

साहब ने मुझे बुलाकर कहा—

"तुमसे हम बहुत खुश हैं। तुम्हें सैनिक-ट्रेनिङ्ग में जाने के लिए लिख देते हैं।"

मैं ने सलामकर कहा—

"बहुत अच्छा, हुजूर।" और मन ही मन कहा—"जान बची और लाखों पाये।"

"फिर, परीक्षा के लिए मैदान में मैं भेज दिया गया। चाँदमारी हमारी योग्यता का निर्णय करनेवाली थी।"

"बन्दूक चलाने के अभ्यास के कारण मेरा निशाना सधा हुआ था इसलिए मुझे अपने ऊपर विश्वास था।"

"दूर के निशाने में केवल मेरा एक निशाना चूका जहाँ ६ बार के प्रयत्नों में कोई-कोई एक-दो बार सफल हुआ था।"

"नजदीक की चाँदमारी में तो मेरा एक भी निशाना गलत नहीं हुआ।...."

"और उसके बाद ही मैं सैनिक कैम्प में रहने लगा।"

"एक दिन की दुर्घटना की चर्चा करूँ इसके पहले मुझे एक कप चाय पिलाइए गुरुदेव!...."

बोतलानन्द महाराज अपने गुरुदेव दीपचन्द्र नाथ के मुँह की ओर देखने लगे।

"चाय बनकर आ जाती है तब तक कहानी का सिलसिला आप जारी रखें !"—मैंने निवेदन किया।

मगर एक बार बोतलानन्द के मुँह से जो निकल गया वह मानो 'ब्रह्मवाक्य' हो गया।

उन्होंने दृढ़ निश्चयात्मक स्वर में कहा—

"धत्तेरे की ! बिना चाय पिये ज़ुबान न हिलाऊँगा।"

"और अगर सिगरेट की एक बत्ती सुलगाकर, आपके मुँह में लगा दी जाय ?..."

मैंने प्रश्नसूचक दृष्टि उनके मुँह पर डाली।

"आप तो एकदम 'घोंघाबसन्त' ही हैं। माँगे गुड़ और दे ढेला।"—बोतलानन्द मेरे भोलेपनपर जैसे खिल्ली उड़ा रहे थे।

"तुम चुप रहो यार 'घोंघा' अब बोतलानन्द चाय पिये बगैर नहीं मानेंगे !...."

मिस्टर 'सिंह' के स्वर में खास ढङ्ग से सङ्केत था।

मैं मुस्कुराहट छिपाता हुआ चुप हो गया।

८

और चाय सुड़कने के बाद ही बोतलानन्द ने इस प्रकार ज़ुबान को कैंची की तरह चलाना शुरू किया—

हाँ तो, उस दिन—

"मैं हवाखोरी के लिये निकला था।"

"मल का वेग मालूम पड़ा।"

"इधर-उधर दृष्टि दौड़ायी।"

"एक जगह पानी जमा था और उसके पास ही लंबे-लंबे 'खर' थे।"

"बड़ी कठिनाई से वेग रोके हुए मैं उस खर के पास पहुँच सका। पैंट खोलने में जितना समय लगा उस थोड़े समय में मुझे किस प्रकार बेचैनी का सामना करना पड़ा था—उसे शब्दों द्वारा प्रकट करना मुश्किल है।"

"और मैं 'आवश्यक-कर्म' से छुट्टी भी नहीं पा सका था कि कुछ लोग लट्ठ लिये मेरी ओर दौड़ते नजर आये।..."

"मेरे कान खड़े हुए। बापरे, आज क्या होनेवाला है!..."

"जल्दी-जल्दी आबदस्त से छुटकारा पा मैं आफत टूटने की प्रतीक्षा करने लगा।"

"कुछ ही क्षणों बाद लाल-पीली आँखें दिखलाते 'आदमी के बेटों' से मैं घिर गया था।"

"दिमागपर जोर लगाकर मैं हार चुका था फिर भी मेरी समझ में बात नहीं आई कि उन आदमी के बेटों के रुष्ट होने का क्याकारण है?..."

"बात क्या है ?...." कहकर, मैंने प्रश्नसूचक दृष्टि उन लोगोंपर डाली जो किसी बुरे इरादे से मुझे घेरे हुए थे।

"आँखें क्या फूट गई हैं ?...."

"दिमाग क्या दीमक चाट गया है ?...."

"सर से भूत उतरवाने का इरादा है ?...."

"खोपड़ी क्या फालतू है ?...." आदि प्रश्नों की बौछार से मैं घबड़ा उठा। बोला—

"महापुरुषों ! किसलिए आप लोग गले की नस तोड़नेपर आमादा हैं ? कुछ मुझे भी तो बतलाने की कृपा करें !"

"ऐंठा हुआ है।"

"सिपाही होने का घमण्ड है इसे।"

"सारा घमण्ड क्षण में छूट जायगा।...."

और भी तरह-तरह की बे सिर पैर की बातें उनके मुँह से निकलती रहीं और मैं चुपचाप सुनता रहा।

अचानक मेरे दिल ने कहा—"बोतलानन्द, क्रोध न करो। सभी कमबख्तों का सिर फिर गया है।"

और मैंने मुस्कुराते हुए कहा—"आओ, आओ, मेरे साथ मेरे डेरेपर चलो ! मैं तुम्हें मनभर मिठाइयाँ खिलाऊँगा।...."

अचानक मेरे बढ़ते हुए कदम रुक गये। एक ने लपककर मेरी कलाई पकड़ ली। बोले—"चले कहाँ बच्चू ? पहले जवाब दो कि 'मजार' के पास तुमने 'आबदस्त' करने की गुस्ताखी क्यों की ?...."

मजार ?...." मैं चौंक पड़ा। सारी बातें मेरी समझ में आ गईं। मैंने घी से अधिक वाणी को मुलायमकर कहा—

"मुझे मालूम नहीं था।...."

उत्तर मिला—"हर कसूर करनेवाले 'अनजान' बनकर ही अपने कसूर से बरी होना चाहते हैं।"

एक ने कहा—"मगर हम माफ नहीं कर सकते।"

दूसरे ने कहा—"हमें ऐसी सजा देनी चाहिए जिससे फिर कोई 'मजार' के पास ऐसी गलती करने की गुस्ताखी न करे!"

तीसरा बम की तरह भड़क उठा—

"हम अपने पीर का अपमान बरदाश्त नहीं कर सकते।"

"दोस्तो! जो जान-बूझकर पीर का अपमान करे उसके गलेपर आप चाकू चला सकते हैं! मगर मैं तो बेकसूर हूँ। देखने से पता नहीं लगता कि यहाँ कोई मजार भी हो सकता है परन्तु आपलोग कहते हैं तो मैं स्वीकार करता हूँ। मेरे अपराध को आप क्षमा करें! अब से ऐसी गलती कभी भी न होगी—लीजिए, कान पकड़ता हूँ।"

सच मानिए, वैसा विनम्र जीवन में मैं कभी भी नहीं हुआ था।

हुक्म मिला—

"मल को साफकर, जमीन को मिट्टी से लीप देना होगा।" मैंने सर झुकाकर कहा—

"मुझे स्वीकार है। मैं घन्टेभर के भीतर जमीन को साफ-सुथरी बनवा दूँगा बल्कि गुग्गुल और लोहबान भी जलवा दूँगा।"

जख्मपर मिर्चे से लगनेवाले स्वर में आदेश मिला—

"तुम्हें अपने हाथों 'मल' हटाना होगा।"

मैंने लहू का घूँट पीकर कहा—

"ऐसा कर्म मैंने कभी किया नहीं। आपलोग हठ न करें!"

"नहीं, तुम्हें हमारा हुक्म मानना ही होगा।"—एक ने नाक-भौं सिकोड़कर कहा और मेरे शरीर का लहू गरम हो गया। मैंने रूखे स्वर में कहा—

"अगर मैं यह कह दूँ कि मैं अपने हाथों 'मेहतर' का काम नहीं करूँगा?...."

उत्तर मिला—

"तो हम तुम्हारे सर के एक-एक बाल बीन लेंगे !..."

"तुम्हारी गोल खोपड़ी को जड़ से चूरकर देंगे ।...."

"तुम्हारे दाँत तोड़ देंगे !...."

"गरदन का मैल छुड़ा देंगे !...."

"छट्ठी का दूध याद करा देंगे !...." आदि....

बगैर मुह में लगाम लगाये सभी ने शब्दों के एक-एक तीर मेरे हृदय में चुभो दिये ।

मैंने मुह में सीटी लगाकर विशेष ढङ्ग से तीन बार बजा दी। उसके बाद आक्रमण रोकने के लिए तैयार होकर मैंने कहा—"आपलोग अपने-अपने मन का गुबार निकालें तो ! मैं तैयार हूँ उसका मुकाबला करने के लिये ।"

"एक ने राड़ से एक लाठी जमा दी मगर खोपड़ी बच गई ।"

"उछलकर मैंने उसकी लाठी पकड़ी और एक झटके के बाद ही वह मेरे हाथों के इशारेपर नाचने के लिये तैयार थी ।"

आक्रमणकारियों की संख्या दो दर्जन से कुछ अधिक थी और अकेला 'मैं' । फिर भी उछल-कूदकर उनके आक्रमण व्यर्थकर रहा था ।

सीटी की आवाज सुन लगभग एक दर्जन सिपाही मेरी सहायता के लिये आ पहुँचे और मुझे अकेले लड़ते देख विरोधियों के दलपर लबादे हाथ में उठाये टूट पड़े ।

लबादे की मार ने विरोधियों के छक्के छुड़ा दिये ।

कुछ देर बाद ही उन्हें काँखते और कराहते छोड़ हमलोग सैनिक-शिविर में पहुँच गये ।

"मामला सङ्गीन था ।"

अतः मैं अपने सैनिक-दल के अफसर 'खाँ साहब' से मिला—

"खाँ साहब की मुझपर बड़ी कृपा रहती थी ।" उन्होंने पूछा—

"क्यों परेशान हो ?"

"और मैंने बगैर नमक-मिर्च लगाये सारी घटनाएँ बतला दीं।"

"उन्होंने मुझे 'बीमार रहने का प्रमाण-पत्र' देकर अस्पताल में भेज दिया।"

"उसके बाद की घटना अपने एक साथी से इस प्रकार मालूम हुई—"

"घण्टेभर बाद ही कुछ चुने हुए लोग वकील लिये सैनिक-शिक्षा-दल के अँगरेज प्रिंसिपल के पास पहुँचे।"

प्रिंसिपल ने उनकी शिकायतें सुनीं और कहा—"आप लोग उस सिपाही को पहचान सकता जिनके कारण यह बखेड़ा खड़ा?"

शिकायत करने वालों ने कहा—"बेशक।"

"तत्पश्चात् सभी सैनिकों को कतार में खड़ा कराया गया।"

और सभी कतारों से लौटने बाद उन लोगों ने सूखे मुँह से कहा—"वह सिपाही तो इसमें नहीं है।"

प्रिंसिपल ने सावधान किया—"फिर से देख लो!"

शिकायत करने वालों ने उत्तर दिया—"अच्छी तरह हम एक-एक के चेहरे को देख चुके हैं हुजूर!"

और 'हुजूर का बच्चा!' कहकर प्रिंसिपल ने बेंत उठा लिया।

सड़ाक्! सड़ाक्!! सड़ाक्!!!...

प्रिंसिपल शिकायत करने वालों पर मन का बुखार उतार रहा था। जब मैदान छोड़कर, वे आदमी के बेटे चले गये तब प्रिंसिपल ने दाँत पीसकर, कहा—"हमारे सिपाहियों को बदनाम करना चाहते थे वे बदमाश!...."

शिकायत करने वाले 'रोजा बख्शवाने चले थे मगर नमाज उनके गले पड़ी' और अस्पताल में बीमारी का बहाना किये मैं 'आग लगा के जमालो दूर खड़ी' वाली कहावत चरितार्थ कर रहा था। ही....ही.... ही.......

और 'हा....हा....हा...' हँसकर मिस्टर सिंह ने सिगरेट की एक बत्ती 'बोतलानन्द' के हाथों में रख दी।

सिगरेट का धुआँ मुँह से उगलते-उगलते बोतलानन्द ने कहा—"एक दिन मैदान में कमर पर हाथ रखे मैं बीड़ी फूँक रहा था।"

"अचानक घोड़ा दौड़ाता हुआ प्रिंसिपल पहुँच गया। उसके बाद उसके मुँह से वही गाली निकली जो वह क्रोधित होने पर हरेक हिन्दुस्तानियों के लिए 'प्रयोग' करता था।...."

"कौन-सी गाली थी ?"—मि० सिंह पूछ बैठे।

बोतलानन्द ने तनिक रुककर, कहा—"वह सब को 'रंडी का बच्चा' 'रंडी का बच्चा' कहा करता था।"

"ठीक है। आगे बढ़िये !"—

"और बोतलानन्द आगे बढ़े"—

"मैं भी लहू का घूँट पीकर रह गया।"

"वह तो मन का बुखार उतारता ही गया।"

बोतलानन्द उस अंगरेज अफसर के स्वर की नक़ल करते हुए बोले—"यह लड़ाई का मैदान है, नाच-घर नहीं।"

तुम ऐसा माफ़िक कमर पर हाथ रखकर क्यों खड़ा हुआ ?...

मैंने कहा—"कसूर हुआ। माफ़ किया जाय !"

उसने पूछा—"कौन जाति है तुम ?"

मैं बोला—"राजपूत।"

उसने गरजकर कहा—"डबल !"

'डबल' का अर्थ था मैं उस मैदान का दौड़ते हुए दो बार चक्कर लगाऊँ जिसके चारों ओर का घेरा एक मील का था।...

"मैं मन मसोसकर, एक ओर दुलकी चाल से दौड़ा।"

"उसने मेरे पीछे घोड़ा लगा दिया।" डपटकर बोला—"और तेज।"

"और मैं सरपट दौड़ने लगा।"

"किसी-किसी तरह एक चक्कर पूरा किया।"

"दूसरी बार में तो दस-दस कदम पर गिर पड़ता। साथ ही निर्दयी अंगरेज का हुक्म होता—जल्द उठो! दौड़ो! रुको मत!...."

"मेरी तो यह हालत हो गई कि अब दम निकलेगा ही। मैंने समझ लिया, आज जान निकलकर ही रहेगी।"

और एक बार गिरा तो अङ्गरेज ने कहा—"बस! रुक जाओ! अब से 'नचनिया' की तरह कमरपर हाथ मत रखना!...."

मैंने उसी समय प्रण कर लिया—"बच्चू! तुमसे बदला नहीं लिया तो असल राजपूत नहीं।"

फिर तो मैं मौके की ताक में रहने लगा।

"एक दिन मैं कुछ सिपाहियों को लाठी चलाना सिखला रहा था। नजरें प्रिंसिपल को खोज रही थीं।

"उसी क्रोध की आग में कूद पड़े एक उड़िया अफसर।"

"बेचारे कुछ रायफलधारियों को 'मार्च' कराते लेआ रहे थे।"

"बगैर मेरे सिपाहियों के मार्ग से हटे, वे आगे नहीं बढ़ सकते थे।...."

मैंने सिपाहियों को हुक्म दिया—"तुम लोग अपने-अपने स्थानपर डटे रहो!"

"सिपाही तनकर खड़े हो गये।"

उड़िया अफसर नाक-भौं चढ़ाते हुए बोला—

"अपने सिपाहियों को रास्ते से हटाओ, नहीं तो मैं अपने सिपाहियों को आगे बढ़ा दूँगा।"

मैंने मूँछपर हाथ फेरते हुए कहा—

"मेरे सिपाही खूँटे की तरह खड़े रहेंगे। तुम अपने सिपाहियों को दूसरी राह से आगे ले जाओ!"

"दूसरे ही क्षण उसके सिपाही सङ्गीन सामने किये आगे बढ़े।...."

"मैंने उछलकर, उड़िया महाशय को घोड़े से खींच लिया और उन्हें दबोचकर, अपने सिपाहियों को लाठी चलाने का हुक्म दिया।"

"लाठी की मार से सङ्गीनधारी घबड़ाकर भागे।"

"उड़िया महाशय अपने गाल सहलाते प्रिंसिपल के पा पहुँचे।"

"प्रिंसिपल ने आँखें लाल-पीली दिखलाने के बाद एक महीने 'कैद' की सजा सुना दी।

"मैं छः सङ्गीनधारी के पहरे में रहने लगा।..."

बाँहपर 'कैदी' की डङ्का बजानेवाली पट्टी बाँध दी गई।

"और जब महीने बाद मैं पहरे से मुक्त हुआ तब ओंठों को दाँत से दबाता, प्रिंसिपल की गरदन का मैल छुड़ाने का अवसर खोजने लगा।"

"एक दिन मैं सिपाहियों को 'परेड' करा रहा था। अचानक घोड़ेपर आते प्रिंसिपल पर दृष्टि पड़ गई।"

"मैं मुँह फेरकर, सिगरेट निकाल सुलगाने लगा।"

घोड़े की टाप का स्वर उच्च हुआ और प्रिंसिपल का क्रोधपूर्ण स्वर सुनाई पड़ा—"रंडी का बच्चा! रंडी का बच्चा!...."

"मैंने जैसे सुना ही नहीं।"

"वह अंगारोंपर लोटता मेरी ओर बढ़ा।"

"मुड़कर देखा तो वह घोड़े से उतर पड़ा था।"

"मैं शेर की तरह उसपर टूट पड़ा।"

"वह एक झटके में जमीन सूँघने लगा।"

"मैं लात और घूँसों से उसकी पूजा करने लगा।"

"बाबू! माफ कर दो!"—वह गिड़गिड़ा उठा।

मैंने एक लात जमाकर कहा—"और कहो रंडी का बच्चा।"

"वह धूल झाड़ता उठ खड़ा हुआ और बीस रुपये मेरे हाथपर रखकर बोला—"बाबू! तुम अपने सिपाहियों के साथ मिठाई खा लेना! और

देखो सिपाही बाबू, तुम लोग भी किसी से यह बात मत कहना! अब हम किसी को भी 'रंडी का बच्चा' नहीं कहेगा।...."

दूसरे दिन अपने आफिस में बुलवाकर उसने कहा—

"बाबू! तुम बहादुर है मगर सेना में नहीं रह सकता।"

"जाओ, तुम्हें सेना से छुट्टी दिया। तुम दारोगा बनकर, रुपया कमाना!...."

"बहुत खूब।"—मेरे मुँह से निकल गया।

"खुश है न?"—प्रिंसिपल ने पूछा।

"जी हाँ, सरकार।"— मैंने कह दिया।

"वाह, बहुत अच्छे!...." मिस्टर सिंह के मुँह से निकला, और बोतलानन्द ने कुरसी छोड़ अपने 'सेल' में जाने के लिए ठोस कदम बढ़ा दिये।

९

बोतलानन्द को पहेलियों से इस कदर चिढ़ होगी, यह हमें ज्ञात न था। जब हम तीनों (दीपचन्द्रनाथ, मि० सिंह और मैं) एक पहेली हल करने के लिए, चोटी का पसीना एँड़ी तक बहा रहे थे तभी वे आ धमके।

पहेली पर उनकी नजर जमी भी नहीं थी कि वे पैर पटककर चिल्ला उठे—"धत्त गुरुदेव ! यह क्या तमाशा खड़ा कर रक्खे हैं ! अपनी कमाई पर विश्वास रखिए !...."

और हमलोग रोकें-रोकें तबतक एक झटके में उन्होंने अखबार उठा-कर, छप्परपर फेंक दिया।

"कमाई ?....हुँह...."

दीपचन्द्र नाथ झल्ला उठे। बोले—

"वेतन से तो बड़ी कठिनाई से भोजन, कपड़े और बच्चों की पढ़ाई आदि का खर्च सँभाल पाता हूँ। भ्रमण की इच्छा को दफना दीजिए, मगर लड़की के विवाह के लिए रुपये कहाँ से आयेंगे ?...."

"लड़की....!"—क्षणभर के लिए बोतलानन्द के होश उड़ गये।

"जी हाँ, हम तीनों एक ही चिन्ता में घुल रहे हैं। हमारी समस्याओं का समाधान तभी हो सकता है जब हमें प्रथम पुरस्कार अर्थात् दस-बारह हजार रुपये मिल जायँ।..."

मि० सिंह एक साँस में ही बक गये।

"सुनिये !" बोतलानन्द ताव में आ गये। बोले—

"शादी की थी मैंने अपनी लड़की की।"

"आपके पास घूस के पैसे जमा होंगे।"—मि० सिंह ने आवेश में कहा।

"कैसा घूस ? बीस वर्ष की नौकरी में कुल पन्द्रह सौ रुपये मैंने जमा कर पाये थे !...."

"और हो गई शादी....?"—अविश्वास के कारण उत्पन्न क्रोधपूर्ण स्वर में प्रश्न किया मि० सिंह ने।

"कैसे नहीं होती ? मैं झूठ नहीं बोलता।"—

बोतलानन्द ने सफाई दी।

मि० सिंह उबल पड़े—

"किसी भिखमङ्गे के गले में तब आपने लड़की को बाँधा होगा।"

"धत्त ! भिखमङ्गा को मारूँ गोली। मेरी लड़की दूध का कुल्ला करने राजपरिवार में गई।"—

बोतलानन्द विजय के गर्व से फूल उठे।

इस बार मैंने मौन व्रत तोड़ा। बड़ी उत्सुकता से पूछ बैठा—

"ऐसा क्योंकर हुआ श्रीयुक्त बोतलानन्द ?"

"हाँ, सुना दीजिए वह कहानी !"

दीपचन्द्र नाथ बोल उठे।

"बेशक ! सम्भव है, हमलोगों को उससे कुछ शिक्षा मिले।" मि० सिंह की वाणी थी।

"आपलोग मुँह खोलने भी दीजिएगा ?"—बोतलानन्द ने कुर्सीपर इतमीनान से बैठते हुए कहा।

"कहिए, कहिए ! हम तीनों मुँह सी लेते हैं।"

मि० सिंह ने बोतलानन्द को मुँह खोलने के लिए उभारा।

और बोतलानन्द के मुँह से जैसे फूल झड़ने लगे । बोले—

"होली की छुट्टी थी । मनमें लड्डू बनाता मैं घर पहुँचा । पिताजी बैठक में बैठे गाँजे का दम लगा रहे थे । उनका प्यारा नौकर 'मेरखून' उनके पाँव दबा रहा था ।"

मैंने आशीर्वाद की कामना से उनके पाँव पकड़े । विश्वास था, वर्षों बाद घर लौटे बेटे पर वह अपना प्यार लुटायेंगे ही, मगर जब उन्होंने विस्मय और क्रोध से घूरते हुए कहा—

"बोतला है रे ?"

मेरखून ने हुँकारी भर दी ।

बस, ऐसा लगा जैसे मेरी आँखों के सामने बिजली कौंध गई । पिताजी ने ऐसी फुर्ती से जूते हाथ में पकड़े और ऐसी तेजी से उसे मेरे सिर पर गिराते हुए लगातार दस की संख्या गिनी कि मुझे सँभलने का मौका भी नहीं मिला ।

जब उनके हाथ रुके ?

इतमीनान से बैठते हुए उन्होंने कहा—

"वर्षों बाहर रहकर गुलछर्रें उड़ाता रहा । लड़की सयानी हो गई उसकी कोई चिन्ता ही नहीं । ऐसा 'बोतल' और कौन होगा ?...."

'मेरखून' ने मेरे मुँह की ओर देखकर, पिताजी की ओर का रुख किया । आजिज़ी से उसने कहा—

"सरकार ! 'छोटे सरकार' को माफ कर दें !"

"तुम चुप रहो !"—पिताजी उबल पड़े ।

मेरखून की बोलती बन्द हो गई ।

पिताजी मेरी ओर घूम पड़े । गरजकर उन्होंने हुक्म सुनाया—

"आँखों के सामने से दूर हो जा !"

और भींगी बिल्ली की तरह मैं हवेली के भीतर पहुँच गया ।

पत्नी मुझे देखते ही खिल गई मगर मेरी आकृति देख दूसरे ही क्षण मुरझा भी गई। बोली—"कुशल तो है?"

मैं उत्तर दिये बिना चारपाई पर बैठ गया।

मुझे गुमसुम देख पत्नी भी कुछ देर चुप रही।

"मैं पूछती हूँ...."

उसने मुँह खोला और मैंने डाँट कर कहा—

"धत्त! चुप भी रहोगी?"

"आखिर क्यों चुप रहूँ?"—

राजपूत की बेटी जैसे मुँह बन्द नहीं रखने की कसमें खा बैठी।

"सर मत खाओ!"—मैं झुँझला पड़ा।

"वर्षों बाद तो घर की सुधि आई और आए भी तो लड़ने के लिए कमर कसे हुए।"—पत्नी बरस पड़ी।

"तुम तो सरपर चढ़ रही हो।"

"अच्छा, जो पाँच पड़े उसी के पास जाकर रहो! मेरे पास क्यों आये?..."

पत्नी गाल फुला बैठी।

"तो चला जाऊँ?"

मैं आवेश में उठ खड़ा हुआ।

"मेरे कहने से न रुकोगे और न मेरे कहने से जाओगे। तुम तो अपने मन के मुख्तार हो। अपना पेट खुजलाना जानते हो। तुम्हें औरों से क्या मतलब? घर में लड़की सयानी पड़ी है और उसके विवाह की चिन्ता भी नहीं। ताने के मारे मेरी छाती छलनी हो गई।..."

पत्नी और भी कुछ बकती मगर मैंने तनकर कहा—"कुछ मेरी भी सुनोगी? आखिर होली की छुट्टी में पचास कोस दूर घर मैं क्यों आया?..."

उसी अवसर पर माँ पहुँच गई।

"मेरे बेटे !...."

वह मेरी ओर बड़ी तेजी से बढ़ी ।

मैंने फुर्ती से अलग हटते-हटते कहा—

"अलग ही रहो माँ ! ताकि, जूते और घूँसे से मेरा स्वागत किया जाय, इसलिए मैं घर नहीं आया ।"

वह आँखें फाड़-फाड़कर, मुझे देखने लगी । बोली—"कौन तुझे मारेगा मेरे बेटे ?...."

और उसने सन्देह भरी दृष्टि मेरी पत्नी पर डाली ।

पत्नी के तेवर चढ़े हुए देख, माँ बरस पड़ी—

"बहू, यह तूने क्या किया ? सालभर के बाद मेरा बेटा मेरे घर आया और तूने उसकी आरती उतारने के बदले, उसे पीट दिया । छिः-छिः, पतिपर हाथ उठानेवाली कभी स्वर्ग में नहीं जाती । उसके पाँवोंपर गिरकर, माफी माँग !...."

"पाँवोंपर गिरनेवाली को तो साथ जाए नहीं फिर कौन उनके तलवे सहलाये ?"—

पत्नी की विष भरी वाणी से मैं तिलमिला उठा ।

दाँत किटकिटाते हुए मैंने कहा—

"जी चाहता है, तुझे कच्चे निगल जाऊँ 'रमसूरता' की माँ !"

"रामसूरत" मेरे बेटे का शुभ नाम है ।

"इसमें कोई झूठ नहीं ! तुम तो मुझे फूटी आँखों नहीं देखना चाहते । काश ! भगवान मुझे धरती से उठा लेते !...."

पत्नी रोने की तैयारी करने लगी ।

मैंने उसे चिढ़ाने के लिए कहा—

"ऐसा मेरा भाग्य कहाँ ?....और भगवान तो ऐसे दिल्लगीबाज हैं कि जो जिससे पीछा छुड़ाना चाहता है—वह उसी के गले कण्ठी की तरह बाँध देते हैं ।...."

"तुमलोग चुप भी रहोगे ?...."

माँ बोल उठी—

"बेटे, झगड़ा न करो ! भोजन तैयार है, बहू से कहो कि वह तुम्हें जिमा दे ! उसके बाद निश्चिन्त होकर लड़की के विवाह की चिन्ता करो ! इस लगन में शादी नहीं हुई तो फिर अगले साल की राह देखनी पड़ेगी ।"

"लड़की और शादी" सुनते-सुनते कान पक गये माँ ! अब उसका नाम जुबान पर मत लो ! पन्द्रह दिनों के भीतर विवाह पक्का कर दूँगा...."

और दूसरे दिन लड़के की खोज में निकल पड़ा ।

××में सौ-पचास घर राजपूत हैं । ट्रेन से उतर जब मैं उस गाँव की ओर चला तब आँधी के झोंकों ने धूल उड़ाकर मेरा स्वागत किया ।

मैं मन-ही-मन भगवान को कोस रहा था कि उसने मुझे लड़की का बाप क्यों बनाया ? उससे तो अच्छा होता वह सीधे मुझे अपने पास बुला लेता !

मगर भगवान कब किसकी सुनता है ? वह तो सदा अपने मन की करता है ।...."

अचानक किसी परिचित आवाज ने मेरा नाम लेकर मुझे पुकारा ।

मैं विस्मय और प्रसन्नता से भरा उधर देखने लगा जिधर से आवाज आई थी ।

और अपने क्लास के साथी 'हरिचरण' पर निगाह पड़ते ही उछल पड़ा । बोला—"यार, तुम यहाँ क्या कर रहे हो ?"

"घबड़ाओ नहीं, बतलाऊँगा । पहले स्नान करके भोजन कर लो !" हरिचरण ने मुस्कुराते हुए कहा ।

"वाह, खूब याद दिलायी । मैं तो उसे भूल ही गया था ।" मैं बोल उठा ।

"कोई गहरी चिन्ता है क्या ?"

हरिचरण अपनी उत्सुकता को नहीं पछाड़ सका।

"उसे चिन्ता मत कहो! यह समझ लो, आफत का पहाड़ सरपर टूट पड़ा है।...."

मैं एक साँस में कह गया।

"मैं सुन सकता हूँ?"

"क्यों नहीं?"

"कोई भेद की बात तो नहीं है?"

"अरे वाह, तुमसे क्या छिपाऊँगा?"

"तो सुना दो!"

"लड़की सयानी हो गई, उसके विवाह के लिए योग्य 'वर' की तलाश है।"

और मेरा वाक्य समाप्त होते-होते हरिचरण के अधरोंपर मुस्कान फूट पड़ी। बोला—"जाओ, जाओ, स्नान से फुरसत पा लो!"

उसका नौकर मुझे स्नान-घर में ले गया।

स्नान से फ़ुरसत पाकर, मैं लौटा तो हरिचरण को भोजन की मेजपर बैठे अपनी प्रतीक्षा करते पाया।

"आओ!" उसने मुझे बड़ी प्रसन्नता से बुलाया और मैं उसकी बगल में जा बैठा।

"यार, बड़े ठाट-बाट से रहते हो।"—

मैं उसकी शान से काफी प्रभावित हुआ था।

"यह सब तुम्हारी कृपा है।"—

हरिचरण मुस्कुरा पड़ा था।

"झूठ मत बोलो! मैंने तुमपर कब कृपा की?...."

मेरे शब्दों ने हरिचरण को जी खोलकर हँसने के लिए मजबूर किया। उसने हँसते-हँसते पूछा—तुम तो बोतल के बोतल ही रहे।

"नहीं यार, मैं तो बीस वर्षों से सरकारी मुलाजिम हूँ।"—बड़े गर्व से मैंने कहा।

"कान्सटेबल तो नहीं हो?"

"धत्त! तेरा बुरा हो। कान्सटेबल हो मेरा दुश्मन। मैं तो दारोगा हूँ।"—शरीर को कड़ा दिखलाते हुए मैंने हरिचरण को उत्तर दिया।

"तो तुम 'दारोगाजी' हो?"—

हरिचरण ने भाग्यपर ईर्ष्या करते हुए पूछा।

"और नहीं तो क्या?"

"यार, दारोगा होकर भी तेरी नजरें नहीं बदलीं। बीस वर्ष के बिछुड़े साथी को भी तूने पहचान लिया!"

"वाह, जिनकी आँख पर चर्बी छा जाती है उनकी बनावट और ही किस्म की होती है।"—

और भोजन के बाद मैं विश्राम कर रहा था अचानक हरिचरण ने मुझे जगाया।

उसकी आकृति देख हड़बड़ाकर मैं उठ बैठा।

उसने प्रश्न किया—"××× के राजपरिवार में अपनी लड़की दे सकते हो न?"

"बड़ी खुशी से। मगर,...."

"तुम चुप रहो।" मुझे आगे बोलने से रोककर हरिचरण चला गया।

मैं उत्सुकता को नहीं दबा सकने के कारण दबे पाँव कमरे से बाहर निकला।

दूसरे कमरे में हरिचरण एक वृद्ध महापुरुष से बातें करने में मशगूल था।

मैं ऐसी जगह जा खड़ा हुआ जहाँ से मैं उन दोनों की बातें सुन सकता था मगर वे मुझे नहीं देख सकते थे।

हरिचरण कह रहा था—"मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई राजा साहब कि आपने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली। यह सम्बन्ध हो गया तो मुझे भी गर्व होगा।...."

"मुंसिफ साहब, मैं भला आपकी बात काट सकता हूँ।...."

अच्छा, अब आज्ञा दी जाय!...."

वृद्ध सज्जन उठ खड़े हुए।

और मैं दबे पाँव अपने कमरे में पहुँच गया।

हरिचरण मुस्कुराता हुआ मेरे कमरे में आया। बोला—"दारोगाजी, नाश्ता करने के लिए तैयार हो जाइए! आपकी सारी चिन्ता काफूर हो गई।"

"हँह, बैर और विवाह बराबरी में ही शोभता है मुंसिफ!"

हरिचरण चौंक पड़ा। मुस्कुराहट छिपाते हुए उसने कहा—"तुमसे किसने कहा कि मैं 'मुंसिफ' हूँ?"

"दीवार ने।"—मैंने उत्तर दिया।

"अच्छा, तुमने दरवाजे पर लगा बोर्ड देख लिया होगा।" मुंसिफ हरिचरण के मुँह से निकला।

बोर्ड पर तो अभी तक मेरी नजर नहीं पड़ी थी इसलिए मुस्कुराकर मैं रह गया।

फिर उसने कहा—

"राजा साहब का एक बहुत बड़ा 'केस' मेरे हाथ में है। सबूत तो उन्हीं के पक्ष में मिल रहे हैं....फिर भी वे मेरी बात मानेंगे ही।"

मैंने उससे कहा—

"कुल पन्द्रह सौ रुपये ही मेरे पास हैं—यह समझ लो!"

उसने कहा—"घबड़ाओ मत! इतने में सब शान से हो जायगा।"

और तिलक के दिन मेरी घबड़ाहट का क्या पूछना था? दो-सौ एक रुपये मखमल के थैले में रखकर मैंने भेजे। नाई को मैंने हुक्म दिया—

कि वह घोषणा कर देगा कि 'अशर्फियों के थैले को जब खोलें तब राजा साहब ही। वह भी तिलक के बाद एकान्त में।...''

और बड़ी उत्सुकता से मैं परिणाम की प्रतीक्षा करने लगा मुंसिफ हरिचरण के बँगले में।

आधीरात को नाई मेरे पास पहुँचा। बोला—

''सरकार, मैंने आपके कथनानुसार ही किया। राजा साहब बड़े सज्जन हैं। उन्होंने एकान्त कमरे में थैला खोलकर देखा और उसे फौरन आलमारी में बन्द कर दिया।''

उपस्थित सज्जनों ने उन्हें तङ्ग किया तो राजा साहब ने कहा—''दो सौ एक अशर्फियाँ हैं।''

मैं अपनी प्रसन्नता छिपा नहीं सका।

दूसरे दिन सुबह ही राजा साहब मुंसिफ के बँगले पर पहुँचे। उन्होंने नाराजगी प्रकट करते हुए कहा—

''मुंसिफ साहब, मेरे साथ बड़ी दिल्लगी की गई है।''

''वह क्या?''—हरिचरण विस्मय से बोला।

''तिलक के नाम पर केवल दो सौ एक रुपये...''

''हैं, मैंने तो सुना है, उतनी अशर्फियाँ थीं।''

हरिचरण ने राजा साहब के मुँह की बात छीन ली थी।

''वह तो मैंने नाक बचाने के लिए कह दिया था।''—राजा साहब का क्षुब्ध स्वर था।

और उसी समय हरिचरण ने मुझे बुलाकर पूछा—

''दारोगाजी, राजा साहब तो फरमाते हैं थैले में केवल 'दो सौ एक' रुपये थे...''

मैंने आवेश में कहा—''यह कैसे हो सकता है? वे तो सभी के सामने स्वीकार भी कर चुके हैं।...''

''मैं सच कहता हूँ समधी साहब!...''

"राजा साहब, आप झूठ नहीं बोल सकते—यह तो मैं भी स्वीकार करता हूँ मगर अब गड़े मुर्दे को उखाड़ने से फायदा क्या ? अशर्फियाँ किस्मत की नहीं थीं—यही समझ अब सन्तोष करना चाहिये।" मैंने बड़े ही शान्त भाव से कहा।

"ब्राह्मण और नाई ने मिलकर, अशर्फियाँ हजम कर लीं।"—राजा साहब ने अनुमान लगाया।

"मगर अब तो उनसे पूछताछ करने योग्य भी हम नहीं रहे क्योंकि आपने रुपये का जिक्र नहीं किया बल्कि अशर्फियों की घोषणा कर दी।...."

मुंसिफ हरिचरण ने तर्क उपस्थित किया।

और राजा साहब हाथ मलकर रह गये।....

उसके पश्चात् धूमधाम से बारात मेरे गाँव में पहुँची।

मैं अपने सम्बन्धियों के साथ अगवानी के लिये आगे बढ़ा।

मेरे हाथों में तलवार थी।

राजा साहब की ओर से आदेश मिला—

"हथियार डालकर मैं उनके आगे अपना सर झुकाऊँ !...."

मेरा खून गरम हो गया। मैंने कड़ककर, कहा—

"धत्त ! सिसोदियावंश भी किसी के सामने झुका है। पहले वे तलवार रखकर, आगे बढ़ें !...."

वृद्ध राजा साहब के बड़े लड़के ने आगबबूला होकर अपने बारातियों को हुक्म दिया—

"बारात लौटा ले चलो !"

मैंने शेर की तरह दहाड़कर कहा—

"सावधान ! अपने दो-चार बन्दूकों पर भरोसा करना व्यर्थ है। यहाँ एक-एक वीर ऐसे हैं जो सैकड़ों को अकेले गाजर-मूली की तरह काटकर फेंक देंगे ! जल्द अपने वाक्य वापस लीजिये !"

वृद्ध राजा साहब को हमारी तलवारों का जौहर मालूम था। उन्होंने

अपने बड़े लड़के को शान्त रहने का आदेश दिया और मिलने के लिए स्वयं आगे कदम बढ़ाये।

उसके पश्चात् निर्विघ्न विवाह-कार्य समाप्त हुआ और लड़की की बिदाई कर, हमारे परिवारवाले दो दिनों तक आँसू बहाते रहे।...."

"आपकी तरह सबको उपर्युक्त सुअवसर प्राप्त होगा, यह सम्भव नहीं। बिल्ली के भाग्य से कभी-कभी ही छींका टूटता है।"—मिस्टर सिंह बोल उठे।

तभी भोलाशङ्कर, बोतलानन्द की पीठ पर सवार हो 'हट्! हट्!' कहने लगे।

बोतलानन्द ने उसे अलग करते हुए कहा—

"शैतान, अलग रह! मुझे घोड़ा ही समझ बैठा।"

और उसी समय मैंने पूछा—

"श्रीयुक्त बोतलानन्द महाराज, बचपन में आपका स्वभाव कैसा था?"

"यह पूछिये, नानी को तङ्ग करते थे या नहीं?"—

दीपचन्द्र नाथ बोल उठे। उनके अधरों पर मुस्कुराहट थी।

"नानी की कहानी अपने गुरुदेव को सुना चुके हैं क्या?" मैंने उत्सुकतापूर्वक प्रश्न किया।

"हाँ।"—उत्तर किया।

"फिर हमलोगों ने कौन-सा अपराध किया है जो हमें नहीं सुनायँगे?"—

मेरे कुछ कहने के पूर्व ही सि० सिंह उबल पड़े।

"वाह, आप चुप तो रहिये!"—कहकर मैंने बोतलानन्द की ओर देखा। वे मेरा अभिप्राय समझ, खखारकर गला साफ करने के बाद, बोल पड़े—

"घोंघावसन्त, अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने का दोष मेरे सर न थोंका जाय तो मैं यह दावे के साथ कहूँगा कि मेरे गाँववाले मुझे बचपन

में देखकर दाँतों तले अँगुली दबाया करते थे। सभी की जुबान पर मेरे लिए यही मुहावरा था 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'।

मैं बात-बात में हाथापाई कर बैठता था। आँखों में धूल डालना, तो साधारण बात थी। किसी के दाँत खट्टे करना, किसी के नाक में दम करना, किसी के कान उमेठ देना, किसी के सिर पर चपत गिराकर, हाथ की खुजलाहट मिटाना तो दैनिक कार्यक्रम में सम्मिलित था।

मेरा ननिहाल मेरे गाँव के निकट ही है।

उस समय मेरी नानी सही-सलामत थी। मुझपर तो जैसे वह जान देती थी। मैं उसकी इस बेवकूफी का खूब ही फायदा उठाया करता था।

गाँव की पढ़ाई समाप्त हुई और मैं शहर जाने के लिए मजबूर किया गया। जाने के पहले मैंने प्रण ठाना—क्यों न नानी का सिर 'उलटे-उस्तुरे' से मूड़ता चलूँ!

ननिहाल पहुँचा उपर्युक्त शुभ विचार लेकर। मुझे शेर की आँखों से देखनेवाले मेरे मामा उस समय अनुपस्थित थे।

मैंने ऐसी सूरत बनायी जैसे सरपर वज्र गिरने ही वाला हो।

"अरे मुँहफौंसा, क्या हुआ रे? मुँह क्यों लटकाया है?" नानी मुझे प्यार से खींचकर अपने पास बैठाती हुई बोली।

"नानी! अब तो मैं अनाथ होने ही वाला हूँ।...." कहकर मैं सिसक पड़ा।

नानी चौंक पड़ी। बोली—"कुछ बतलायेगा भी कलमुँहा!"

"मेरी अच्छी नानी! तेरी बेटी की माँग का सिन्दूर पुछने ही वाला है। पिताजी बहुत बीमार हैं।...." कहते-कहते मैं रो पड़ा।

"हाय राम! हे नारायण! मेरे दामाद की रक्षा करो! हे ब्रह्मबाबा, मेरा दामाद अच्छा हो जाय तो मैं सवा हाथ का लँगोट और सवा सेर बताशे चढ़ाऊँगी।...."

नानी कुछ और बकती मगर मैंने टोका। सिसकते-सिसकते मैंने कहा—

"नानी! माँ ने मुझे भेजा है।...उसने कहा है, अपनी नानी से दो सौ रुपये चुपके से माँग लाओ! शहर से डाक्टर को बुलाना है। रुपये नहीं मिले तो आज रात में पिता जी स्वर्ग सिधार जायगे। हाय!"...कह कर, मैंने छाती में मुक्का मारा।

नानी ने फौरन मुझे दो सौ रुपये देकर कहा—जितनी जल्द हो घर लौट जाओ! मेरे दामाद को कुछ हुआ तो झाड़ू से तेरी खबर लूँगी।....

दूसरे ही दिन नानी ने एक दासी को अपने दामाद की बीमारी की खबर लेने के लिए भेजा।

भंडा फूट गया।

पिताजी ने मुझे धरती से उठाकर गेंद की तरह उछाल दिया।

धरती पर धम्म से मैं गिरा।

पिताजी लगातार पाँच बार लात मार कर बोले—"नमकहराम! मेरे प्राण हरने के लिए 'यमदूत' को निमन्त्रण देता है। मार-मार कर हड्डी-पसली एक कर दूँगा।...."

उसी दिन मैं शहर भाग गया।

और होली की छुट्टी में जब घर पहुँचा तो जेब में एक कौड़ी भी नहीं थी।

मैंने सोचा, फिर नानी पर हाथ साफ करना चाहिए। बड़े शांत और आहिस्ते से मैंने माँ के आगे मुँह खोला—

'माँ! नानी मुझे देखने के लिए तरसती होगी।..." माँ मेरा अभिप्राय समझ कर बोली—

"अब तो वह तेरा स्वागत झाड़ू से करेगी। छठी का दूध याद करना हो तो वहाँ चले जाओ!"

"अच्छा, तो एक बार और किस्मत की परीक्षा लूँगा....।" कह कर मैं उसी समय ननिहाल के लिए चल पड़ा।

मुझे देखते ही मेरी नानी झाड़ू लेकर दौड़ी।

"मुँहझौंसा, मुझे फिर लूटने आया। भाग! भाग!....मैं तेरा मुँह नहीं देखना चाहती।...."

वह तो अंगारों पर लोट रही थी।

मामी का भला हो। शोर सुनकर वह दौड़ी आयी। नानी पर खफा हो उसने कहा—

"बुढ़ापे में अक्ल सठिया गई है। नाती पर कहीं हाथ उठाया जाता है? चलो बबुआ, मेरे कमरे में चलो!...."

"ऊँह, बड़ी आई बबुआ वाली!"

नानी ने अंगूठा दिखलाते हुए कहा—

"मेरा नाती है, मैं उसे मारूँगी, दुलारूँगी, तू कौन है दाल-भात में मूसर बन कर टपकने वाली!"

मामी अपना-सा मुँह लेकर, चली गई।

नानी ने कुछ तिल के लड्डू आगे रखकर, पीठ पर एक धौल जमा दिया। बोली—"एक लड्डू भी छोड़ा तो छठी का दूध याद करा दूँगी।"

और दोपहरी में भोजन के बाद सभी सो रहे थे। मैंने धीरे से किवाड़ बन्द कर दिये।

कमरे में मेरे अतिरिक्त नानी थीं जो नींद में बेखबर थी। धरन से मैंने रस्सी लटकायी और ओखल पर खड़ा हो, उसे गले में बाँध लिया।

"नानी!" मैंने स्वर को करुणा में डुबाकर कहा।

नानी की नींद टूटी और मुझे देख वह हड़बड़ा कर उठ बैठी।

"यह क्या रे मुँहझौंसा!...."

"चुप रहो नानी!..." मैंने उसके मुँह की बात छीन ली।

बोला—"अगर हल्ला मचाओगी तो ओखल को ठुकरा दूँगा और तब तुम्हारा प्यारा नाती दुनिया से बिदा हो जायगा।"

"आखिर तुम्हें कौन दुःख है रे जो फाँसी लगाकर मरना चाहता है ?"—नानी घिघिया रही थी।

"मेरी नानी ! रुपये दे-दे कर, तुमने मेरा खर्च बढ़ा दिया है। अब तो पास में पैसे नहीं जो होली में दोस्तों को रसगुल्ले खिलाऊँ !..."

"दस रुपये में काम चल जायगा ?"—

नानी पूछ बैठी। वह बेतरह डर गई थी।

"बार-बार तुम्हारे आगे कौन हाथ पसारता रहेगा ! जो-कुछ देना हो, एक बार ही पकड़ा दो !"—

"आखिर कुछ कह भी तो कलमुँहा।"

"पाँच सौ दे दो ! अधिक एक पैसा नहीं लूँगा।"

"अरी मैया ! इतने रुपये मेरे पास कहाँ ?"

नानी ने दाँतों तले जीभ दबा ली।

"तो लो, मैंने ओखल पाँव से ठेला...."

"अरे मुँहझौंसा, ठहर !...मैं...देखती हूँ।..." नानी गिड़गिड़ा उठी।

"मैं ठहर गया। पाँच मिनट का समय देता हूँ, इतने समय में मुझे रुपये नहीं मिले तो मैं 'ओखल' पाँव से ढकेल दूँगा।..."

और मेरी चेतावनी ने काम किया।

नानी जल्दी-जल्दी एक कोने की जमीन खुरपे से खोदने लगी।

थोड़ी देर बाद ही उसने एक थैली मेरे हाथों में पकड़ा दी।

"भागे भूत की लंगोटी भली" समझ मैंने देर करना उचित नहीं समझा।

और जल्दी से नानी के घर से निकल, खेत-खलिहानों को तड़पते-काँपते अपने गाँव पहुँच गया।

थैली खोलने पर, उसमें से साढ़े सात सौ रुपये निकाले। मैं बाग-बाग हो गया। वाह, मैंने खूब हाथ मारा।...

उस दिन मैंने अपने दोस्तों को ऐसे अच्छे रसगुल्ले खिलाये कि वे अभी तक ओंठ चाटते हैं।...

उसके बाद जब मैं दीपचन्द्रनाथ के दरवाजे पर पहुँचा तब मेरे कान खड़े हो गये। मैंने देखा, सभी के सभी मित्र मुँह लटकाये बैठे हैं।...

मैंने आँसू बहाने का कारण पूछा तो मि० सिंह ने सिसकते हुए कहा—"गुदड़ी का लाल चला गया।"

और बोतलानन्द को वहाँ अनुपस्थित देख मेरे पाँव तले जमीन खिसक गई।

"क्या अगिया बैताल (बोतलानन्द) के प्राण यमदूत हर ले गये।" मैं उत्सुकतापूर्वक पूछ बैठा।

"जी नहीं, उनकी बदली हो गई।"

दीपचन्द्रनाथ बोल उठे।

मुझे संतोष हुआ, चलो जीवित तो हैं!...

"बदली से उसका सितारा बुलन्द हो गया। वह प्रतिदिन 'सेल' से छुटकारे के लिए 'महावीर हनुमान' को गुहराया करता था।"—मि० सिंह ने लम्बी साँस ली।

"अब वह खूब चाँदी काटेगा।"

मि० रमेश प्रसाद का हृदयोद्गार था।

"बेशक! उसकी पाँचों उँगलियाँ घी में होंगी।"

दीपचन्द्रनाथ का आवेशपूर्ण स्वर था।

और मैंने मुँह में दही जमाना अनुचित समझा। बोल उठा—

"तो हमलोग भी गम को लात मारकर कहें—जहाँ मुर्गा न बोलता हो वहाँ क्या सबेरा नहीं होता?..."

❀ बस ❀